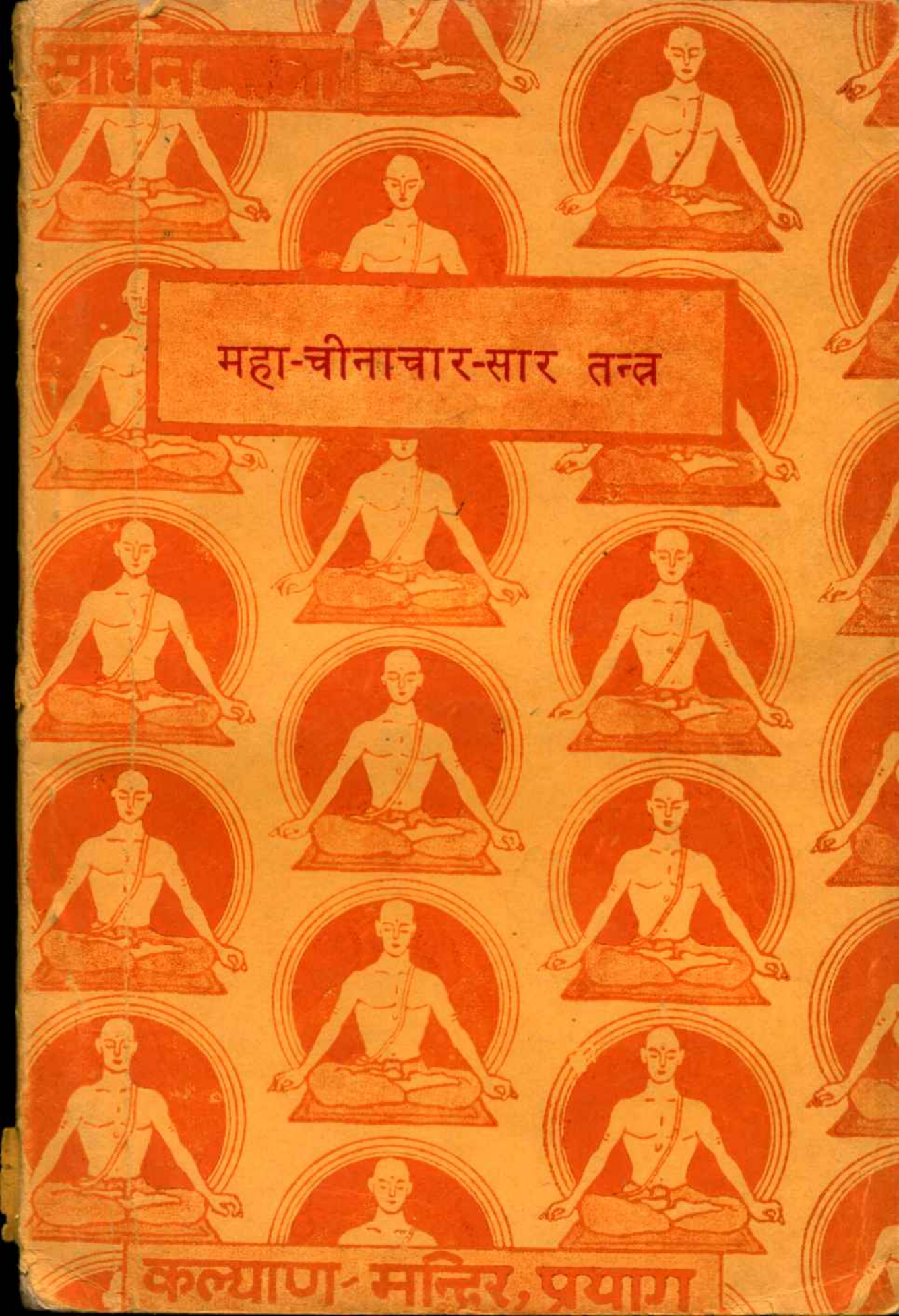

महा-चीनाचार-सार तन्त्र

कल्याण-मन्दिर, प्रयाग

5112
2-तंत्र

महा-चीनाचार-सार तन्त्रम्

[संशोधित एवं परिवर्द्धित]

सम्पादक

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—२११००६

द्वितीय संस्करण] मार्गशीर्ष शिवरात्रि २०४३ [६-००

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६

प्राप्ति-स्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

(धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशक-विक्रेता)

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६

मूल्य ६-०० रु०

मुद्रक :

परा-वाणी प्रेस

अलोपीबाग मार्ग

प्रयाग—२११००६

अनुक्रम

दो शब्द		(चार)
१ प्रथमः पटलः	...	१
महा-चीनाचार-क्रमः		
२ द्वितीयः पटलः	...	६
चीनाचार-विधिः		
३ तृतीयः पटलः	...	११
कुल-धर्म-महिमा		
४ चतुर्थः पटलः	...	१७
कुल-द्रव्य-विधानम्		
५ पञ्चमः पटलः	...	२२
समयाष्टकम्		
६ षष्ठः पटलः	...	२८
रहस्य-विधान-वर्णनम्		
७ सप्तमः पटलः	...	३१
त्रिजया-कल्पम्		
८ हिन्दी-सारांश	...	३३

प्राक्कथन

'चीनाचार' से सम्बन्धित यह तन्त्र बड़े महत्व का है क्योंकि **'आचारः प्रथमो धर्मः'**—इस सिद्धान्त के अनुसार पहला कर्तव्य आचार का पालन करना ही है। यह बड़े खेद की बात है कि इस दृष्टि से आज तक किसी विद्वान् ने इस तन्त्र पर विचार नहीं किया है। 'चीन' का अर्थ प्रायः चीन देश ही लिया जाता रहा है, जब कि यह शब्द पुरातन का भी बोधक है। ऐसी दशा में चीनाचार से तात्पर्य चीन देश के आचार से न होकर तन्त्रोक्त प्राचीन आचार से है, यह धारणा अधिक उचित प्रतीत होती है।

महा-महोपाध्याय स्व० पं० गोपीनाथ कविराज कृत 'तान्त्रिक-साहित्य के पृष्ठ २१०-२११ में चीनाचार से सम्बन्धित पाँच पाण्डुलिपियों का उल्लेख है—

१ चीन-तन्त्र—कौलिकार्चन-दीपिका में उद्धृत (ता० सा० के पृष्ठ १५८ के अनुसार 'कौलिकार्चन-दीपिका' नामक १५०० श्लोकों का ग्रन्थ जगदानन्द परमहंस द्वारा १७०० शकाब्द में काशी में लिखा गया था। यह ग्रन्थ कहीं 'कुल-दीपिका' और कहीं 'अर्चन-दीपिका' नाम से उल्लिखित है। (इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि एशियाटिक सोसायटी बंगाल के संग्रहालय में है, क्रमांक है ६४३६।)

२ चीनाचार—नेपाल दरबार के संग्रहालय में, क्रमांक है २। २०७।

३ चीनाचार-क्रम—शिव-प्रोक्त। जम्मू कश्मीर के महाराज के निजी पुस्तकालय में, क्रमांक १०२१।

४ चीनाचार-तन्त्र—श्लोक-संख्या ४००, पूर्ण । संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, क्रमांक २३८५८ । यह तन्त्र 'प्राण-तोषिणी' में उल्लिखित है ।

५ चीनाचार-सार— देखें महा-चीन-क्रमाचार ।

'तान्त्रिक साहित्य' के पृष्ठ ४८६ में 'महा-चीन-क्रमाचार' के सम्बन्ध में विस्तृत टिप्पणी है, जो मननीय है । यथा—

लिखित—१ नामान्तर—'चीनाचार-तन्त्र' या 'आचार-सार तन्त्र' अथवा 'आचार-तन्त्र' । शिव-पार्वती-संवाद-रूप में यह सात पटलों में पूर्ण है । यह गुह्य तन्त्र है । इसका विषय है वशिष्ठाराधित भगवती तारा की उपासना ।

प्रसिद्धि है कि वशिष्ठ जी ने कामाख्या-मण्डल-वर्ती नीलाचल में दीर्घ काल (१०,००० वर्ष) तक संयमपूर्वक भगवती तारा की उपासना की किन्तु भगवती का अनुग्रह प्राप्त नहीं हुआ । तदनन्तर वशिष्ठ जी ने तारा को शाप दिया, जिससे तारा की उपासना सफल नहीं होती ।

कहा जाता है कि चीनाचार को छोड़कर अन्य साधना से तारा प्रसन्न नहीं होती । एकमात्र बुद्ध-रूपी विष्णु ही उनकी आराधना और आचार जानते हैं । यह जानकर वशिष्ठ चीन देश में बुद्ध-रूपी विष्णु के समीप उपस्थित हुये । उनका वेद-बाह्य आचार देख वशिष्ठ मन ही मन बड़े विस्मित हुये । वशिष्ठ जी के सोच-विचार में पड़ने पर आकाश-वाणी हुई । उसने कहा कि तारा की आराधना में यही आचार सर्वोत्तम है । दूसरे आचार से वह प्रसन्न नहीं होती । यह सुनकर वे बुद्ध-रूपी विष्णु को नमस्कार कर तारा देवी की आराधना-विधि जानने के लिये बद्धाञ्जलि होकर उनके सामने खड़े रहे ।

बुद्ध-रूपी विष्णु ने भगवती तारा का विधान उन्हें बतलाया।

प्रसङ्गतः स्त्रियों की पूज्यता का उल्लेख करते हुये नौ कन्याओं का उन्होंने निर्देश किया। वे नौ कन्यायें हैं—१ नटिका, २ पालिनी, ३ वेश्या, ४ रजकी, ५ नापिताङ्गना, ६ ब्राह्मणी, ७ शूद्र-कन्या, ८ गोपाल-कन्या तथा ९ मालाकार-कन्या।

उक्त ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख है इण्डिया आफिस पुस्तकालय, लंदन के सूची-पत्र में, क्रमाङ्क २५६३।

२ देखें 'चीनाचार-सार-तन्त्र', कैटलागस कैटोलोगोरम् (एन एल्फाबेटिकल रजिस्टर आफ संस्कृत वर्क्स एण्ड आथर्स, इन थ्री पार्ट्स)—क्रमांक २।९९, ३।९४

३ महा-चीन-तन्त्र—'प्राण-तोषिणी' में उद्धृत।

उक्त विवरण में जिन पाण्डुलिपियों का उल्लेख हुआ है, उनमें से एक को छोड़कर अन्य किसी पाण्डुलिपि की चर्चा कहीं उपलब्ध नहीं है। केवल चौथी पाण्डुलिपि 'चीनाचार तन्त्र' का कदाचित् प्रकाशन हो गया है क्योंकि संस्कृत विश्व-विद्यालय, वाराणसी द्वारा सन् १९८१ में प्रकाशित 'तन्त्र-संग्रह' के चतुर्थ भाग में पृष्ठ २७९ पर 'चीनाचार-तन्त्रम्' छपा हुआ दृष्टिगत होता है। नाम-साम्य से यह उसी पाण्डुलिपि से सम्बन्धित जान पड़ता है।

'तन्त्र-संग्रह'-गत उक्त 'चीनाचार-तन्त्रम् के सम्पादन में दो और पाण्डुलिपियों की सहायता ली गई है, जिनके नाम पुष्पिकाओं के अनुसार क्रमशः 'आचार-तन्त्रम्' और 'श्रीचीनाचार-तन्त्रम्' हैं किन्तु जिस पाण्डुलिपि को प्रमुखता देकर उक्त तन्त्र का प्रकाशित किया गया है, उसकी पुष्पिका में 'महा-चीनाचार-सार-तन्त्रे' का उल्लेख है। उससे स्पष्ट है कि मूल पाण्डुलिपि के अनुसार ग्रन्थ का नाम 'महा-चीनाचार-सार-तन्त्रम्' ही होना

चाहिये। इस तथ्य की पुष्टि स्व० रसिकमोहन चट्टोपाध्याय द्वारा सम्पादित एवं बँगला-लिपि में मुद्रित 'तन्त्र-संग्रह' से भी होती है क्योंकि उसमें उक्त तन्त्र इसी नाम से प्रकाशित हुआ था।

उक्त 'चीनाचार तन्त्रम्' में पाँच पटल हैं, जिनमें क्रमशः ४४, ४३, ४८, ४२ और ५० श्लोक हैं। इस प्रकार कुल २२७ श्लोकों का यह ग्रन्थ है किन्तु कविराज जी के विवरण के अनुसार ४०० श्लोक होने चाहिए। इससे सन्देह होता है कि जिन तीन पाण्डुलिपियों के आधार पर उक्त तन्त्र का प्रकाशन हुआ है, उनके अतिरिक्त एक अन्य पाण्डुलिपि संस्कृत विश्व-विद्यालय में होनी चाहिए। इस सन्देह का निवारण विश्व-विद्यालय के सम्बन्धित अधिकारी ही कर सकते हैं।

संयोग-वश प्रस्तुत द्वितीय संस्करण का प्रकाशन करते समय हमें 'कौल-कल्पतरु' स्व० पं० देवीदत्त शुक्ल जी के संग्रह में एक जीर्ण पाण्डुलिपि इस तन्त्र की मिल गई, जिससे पता चला कि इसमें पाँच नहीं, सात पटल हैं। इसकी पुष्टि कविराज जी की उक्त विस्तृत टिप्पणी से भी होती है। शुक्ल जी द्वारा संगृहीत जीर्ण पाण्डुलिपि दीमकों द्वारा छिदी हुई होने से उसके कुछ अंश पढ़े नहीं जा सके, तथापि जितना पढ़ा जा सका है, उससे उल्लिखित प्रसङ्ग को सहज ही समझा जा सकता है।

अप्रकाशित 'तन्त्र-दीपनी' नामक संग्रह-ग्रन्थ में 'विजया कल्पम्' उद्धृत है। साथ ही 'षट्-पटली' नाम से 'समयाचार तन्त्र' के छः पटल भी संगृहीत हैं। 'चीनाचार-सार तन्त्रम्' के सात पटलों से इन दोनों का शब्दशः साम्य होने से इनकी सहायता से इस संस्करण को अधिक शुद्ध रूप देने में हमें बड़ी सुविधा मिली है। साथ ही अब तक इस तन्त्र के प्रकाशित

संस्करणों की अपेक्षा इसमें श्लोकों की संख्या भी बढ़ गई है। इसके सात पटलों में क्रमशः ४६, ४४, ५६, ४५, ५८, २५ और ७८ श्लोक हैं। इस प्रकार कुल ३५२ श्लोक होते हैं, जिनमें पृष्ठ ६ के क, ख; पृष्ठ १२ के घ, ङ और पृष्ठ २७ के १, २, ३—इन सात अतिरिक्त श्लोकों को जोड़ने से श्लोक-संख्या ३५९ हो जाती है। कविराज जी के अनुसार ४०० श्लोक होने चाहिए। अतः लगभग ४१ श्लोकों की कमी अब भी है।

शुक्लजी के संग्रह में एक और जीर्ण पाण्डुलिपि 'समयाचार-संकेत-तन्त्रम्' नाम से मिली है, जिसका अपना विशेष महत्त्व है। प्रारम्भ में ही हम यह निवेदन कर चुके हैं कि धर्म-पालन में 'आचार' को जो प्राथमिकता प्राप्त है, उसे ध्यान में रखते हुए चीनाचार, कुलाचार, समयाचार आदि से सम्बन्धित साहित्य पर अभी तक कोई शोधात्मक विचार-विमर्श विद्वानों द्वारा नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में उक्त 'समयाचार-संकेत-तन्त्रम्' के आधार पर शीघ्र ही एक अलग पुस्तक प्रकाशित की जायगी।

मूल तन्त्र के अन्त में सातों पटलों का हिन्दी साराश भी पहले पहल प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि इससे पाठक बन्धुओं को इस तन्त्र की महत्त्वपूर्ण बातों को हृदयङ्गम करने में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

प्रयाग, मास शिवरात्रि, मार्गशीर्ष २०४३ —कुल-भूषण

॥ ॐ नमः पार्वत्यै ॥

प्रथमः पटलः

महा-चीनाचार-क्रमः

श्रीदेव्युवाच—

महा-चीन-क्रमाचारः सूचितो न प्रकाशितः ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महेश्वर ॥ १

इति पृष्टः पुरा देव्या कैलास-शिखरे हरः ।
चिन्तयामास मनसा किञ्चिदामीलितेक्षणः ॥ २

इयमुत्कण्ठिता भूयो भूयः प्रेरयति प्रिया ।
चीनाचार-क्रमं वक्तुं सुप्रकाशं कथं मया ॥ ३

अति - गुह्य - तरः सोऽयमाचारः सिद्धि-दायकः ।
स्त्रीणां चञ्चलया बुद्धया कथं गोप्तुं हि शक्यते ॥ ४

इति सञ्चिन्त्य मनसा पुनराह महेश्वरी ।
महा - चीन - क्रमाचारं ब्रूहि मे परमेश्वर ॥ ५

श्रीशिव उवाच—

अलं यत्नैरलं यत्नैरलं यत्नैर्महेश्वरि !
चीनाचार - क्रमं श्रोतुं विरता भव पार्वति ॥ ६

सर्वथा परम - द्वारो न प्रकाश्यः कदाचन ।
गुह्याद् - गुह्यतरः साक्षात् तत्त्व-ज्ञान-मयः शिवे ॥ ७

स्त्री-स्वभावेन देवेशि ! शश्वन्मां परिपृच्छसि ।
लक्ष - वारं वारिताऽपि श्रोतुमिच्छसि शङ्करि ॥ ८

श्रीदेव्युवाच—

यदि चीन - क्रमाचारं नाद्य कथयसि प्रभो !
प्राण-त्यागं करिष्यामि पुरतस्ते न संशयः ।। ९

इत्युक्तः शैल - तनया - सङ्ग-चक्राननो महान् ।
महा - चीन - क्रमाचारं गदितुं च प्रचक्रमे ।। १०

श्रीशिव उवाच—

सर्वदा गोप्य एवायमाचारः सिद्धि - दायकः ।
तवानुरोधादेवाहं कथयामि महेश्वरि ।। ११

ब्रह्मणो मानसः पुत्रः वशिष्ठः स्थिर - संयमः ।
तारामाराधयामास पुरा नीलाचले मुनिः ।। १२

जपन् स तारिणीं विद्यां कामाख्या-योनि - मण्डले ।
गमयामास वर्षाणामयुत ध्यान-तत्परः ।। १३

वर्षायुतेन तस्यैवं चिरमाराधिता सती ।
नानुग्रहं चकाराऽसौ तारा संसार-तारिणी ।। १४

तदाऽसौ पितरं गत्वा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
कोपेन ज्वलितो विद्यां तत्याज पितुरन्तिके ।। १५

द्वादशादित्य - सङ्काशं तपोभिर्ज्वलितं मुनिम् ।
ब्रह्मा स च मुनिं प्राह शृणु पुत्र ! वचो मम ।। १६

तत्व-ज्ञान-मयीं विद्यां तारां भुवन - तारिणीम् ।
आराधय त्वं सुचिरमनुद्विग्नेन चेतसा ।। १७

अस्याः प्रसादादारोह भुवनानि चतुर्दश ।
सृजामि चतुरो वेदान् कल्पयामि च लीलया ।। १८
एनामेव समाराध्य विद्यां भुवन - तारिणीम् ।
तत्व-ज्ञान-मयो विष्णुर्भुवनं पालयत्यसौ ।। १९

संहार - काले च हरो रुद्र - मूर्ति-धरः परः ।
तामेव तारामाराध्य संहरत्यखिलं जगत् ।। २०

इत्युक्तो ब्रह्मणा योगी वशिष्ठः साधकोत्तमः ।
स्व-पित्रे कथयामास सर्वमाराधन-क्रमम् ।। २१

श्रीवशिष्ठ उवाच—

देवानामादि-भूतस्त्वं सर्व - विद्या - मय प्रभो !
कथं दत्ता दुराराध्या विद्या मह्यमिदं त्वया ।। २२

सहस्र - वत्सरं पूर्वमियमाराधिता प्रभो !
नीलाचले विरमता हविष्यं भुञ्जता मया ।। २३

तथापि देव्यास्तारिण्याः करुणा मयि नाभवत् ।
ततो गण्डूष-मात्रं तु काले काले पिबन् जलम् ।। २४

आराधयामि तां देवीं वत्सराणां सहस्रकम् ।
तथापि यदि नैवाभूत् तारिण्याः करुणा मयि ।। २५

तदाऽहमेक-पादेन तिष्ठन्नीलाचलोपरि ।
परं समाधिमास्थाय निराहारो दृढ़ - व्रतः ।। २६

तामेव केवलं ध्यायन् जपन् तामेव सर्वदा ।
अति-वाहित-वान् वर्ष - सहस्राष्टकमुत्तमम् ।। २७

एवं दश - सहस्रं तु वर्षाणामहमीश्वरीम् ।
कामाख्या - योनिमास्थाय समाराधितवान् प्रभो ।। २८

अद्याप्यनुग्रहं तस्यास्तथापि नैव दृश्यते ।
अतस्त्यजामि दुःसाध्यां विद्यामेनां सु-दुःखितः ।। २९

इति तद्-वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोक - पितामहः ।
उवाच सान्त्वयन् पुत्रं वशिष्ठं मुनीनां वरम् ।। ३०

श्रीब्रह्मोवाच—

वशिष्ठ ! गच्छ पुत्र ! त्वं पुनर्नीलाचलं प्रति ।
तत्र स्थितो महा-देवीमाराधय दृढ़-व्रतः ।। ३१

कामाख्या - योनिमाश्रित्य जगतः परमेश्वरीम् ।
अचिरादेव तत्-सिद्धिर्भविष्यति न संशयः ।। ३२

एतस्याः सदृशी काचिद् विद्या नास्ति जगत्-त्रये ।
इमां त्यक्त्वा पुनर्विद्यामन्यां कां संग्रहिष्यसि ।। ३३

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रणम्य पितरं मुनिः ।
पुनर्जगाम कामाख्यां योनि-मण्डल-सन्निधिम् ।। ३४

तत्र गत्वा मुनि-वरः पूजां सम्भार - तत्परः ।
आराधयन्महा-मायां वशिष्ठोऽपि जितेन्द्रियः ।। ३५

अथाराधयतस्तस्य सहस्रं परि-वत्सरान् ।
जग्मुस्तारा - महादेवी - पादाम्भोजानु - वर्तिनः ।। ३६

तथापि तत्-प्रति प्रीता यथा नाभून्महेश्वरी ।
तदा रोषेण महता जज्वाल स मुनीश्वरः ।। ३७

तदा जलं समादाय तां च शप्तुमुपक्रमे ।
एतस्मिन्नेव काले तु रुष्टमालोक्य तं मुनिम् ।। ३८

चचाल वसुधा सर्वा स-शैल - वन-कानना ।
हाहा-कारो महानासीद् देवी-देवेषु सर्वतः ।। ३९

ततो बभूव पुरतस्तारा संसार-तारिणी ।
वशिष्ठस्तां समालोक्य शशापातीव - दारुणम् ।। ४०

ततो देवी वशिष्ठेन शप्ता न फलदा क्वचित् ।
चीनाचारं विना नासौ प्रसीदति कदाचन ।। ४१

ततो देवी महा-माया तारिणी सर्व - सिद्धिदा ।
उवाच साधक - श्रेष्ठं वशिष्ठं मुनीनां वरम् ।। ४२

श्रीदेवी तारा उवाच—

रोषेण दारुण - मनाः कथं मामशपद् भवान् ?
मदीयाराधनाचारं बुद्ध-रूपी जनार्दनः ।। ४३
एक एव विजानाति नान्यः कञ्चन तत्वतः ।
वृथैव याम - बहुलः कालोऽयं गमितस्त्वया ।। ४४
विरुद्धाचार-शीलेन मम तत्वमजानता ।
तद्-बुद्ध-रूपिणो विष्णोः सन्निधिं याहि सम्प्रति ।। ४५
तेनोपदिष्टाचारेण समाराधय सुव्रत !
तदैव सुप्रसन्नाऽस्मि त्वयि यास्याम्यसंशयः ।। ४६

।। इति महा-चीनाचार-सार-तन्त्रे सर्वाचार-सारोत्तमोत्तमे महा-चीनाचार-क्रमे प्रथमः पटलः ।।

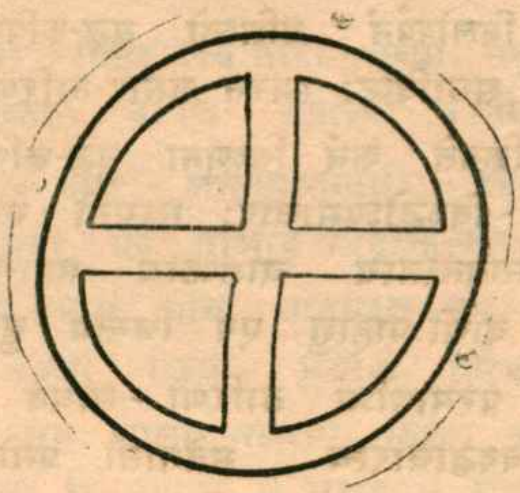

द्वितीयः पटलः

चीनाचार-विधिः

श्रीशिव उवाच—

ततः प्रणम्य तां देवीं वशिष्ठोऽसौ महा-मुनिः ।
जगामाचार - विज्ञान - वाञ्छया बुद्ध - रूपिणम् ॥ १

ततो गत्वा महा-चीने देशे ज्ञान-मयो मुनिः ।
ददर्श हिमवत्-पार्श्वे लोकेश्वर - सु-सेवितम् ॥ २

रणज्जघन-रावेण रूप-यौवन-शालिना ।
मदिरामोद - चित्तेन विलासोल्लसितेन च ॥ ३

शृङ्गार - परिवेशेन जगन्मोहन - कारिणा ।
भय-लज्जा-विहीनेन देवी-ध्यान-परेण च ॥ ४

कामिनीनां सहस्रेण परिवारितमीश्वरम् ।
मदिरा-पान-सञ्जातं मद-मन्थर-लोचनम् ॥ ५

दूरादेव विलोक्यैनं वशिष्ठो बुद्ध-रूपिणम् ।
विस्मयेन समाविष्टः स्मरन् संसार-तारिणीम् ॥ ६

किमिदं क्रियते कर्म विष्णुना बुद्ध-रूपिणा ।
वेद - वाद - विरुद्धोऽयमाचारः सम्मतो मया ॥ ७

इति चिन्तयतस्तस्य वशिष्ठस्य महा-मुनेः ।
आकाश - वाणी प्राहाशु एवं चिन्तय सु-व्रत ॥ ८

आचारः परमार्थोऽयं तारिणी - साधने मुने !
एतद् - विरुद्धाचारस्य मतेनासौ प्रसीदति ॥ क

यदि तस्याः प्रसादस्त्वमचिरेणाभि-वाञ्छसि ।
एतेन चीनाचारेण तदा तां भज सु - व्रत ॥ ख

आकाश-वाणीमाकर्ण्य लोमाञ्चित-कलेवरः ।
वशिष्ठो दण्ड-वद् भूमौ पपातातीव-हर्षितः ।। ९

अथोत्थाय प्रणम्यासौ कृताञ्जलि-पुटो मुनिः ।
जगाम विष्णोः समीपं बुद्ध - रूपस्य पावति ।। १०

अथासौ तं समालोक्य मदिरामोद - विह्वलः ।
प्राह बुद्धः प्रसन्नात्मा किमर्थं त्वमिहागतः ।। ११

अथ बुद्धं प्रणम्याह भक्ति-नम्रो महा - मुनिः ।
यदुक्तं तारिणी-देव्या निजाराधन-हेतवे ।। १२

तच्छ्रुत्वा भगवान् बुद्धस्तत्व-ज्ञान-मयो हरिः ।
वशिष्ठं प्राह सुज्ञानश्चीनाचाराधिकार - वान् ।। १३

श्रीबुद्ध उवाच—

अप्रकाश्योऽयमाचारस्तारिण्या सर्वदा मुने !
तव भक्ति - वशादस्मि प्रकाश्यामीह तत्परः ।। १४

अथाचार - विधिं वक्ष्ये तारा - देव्याः समृद्धिदम् ।
तस्यानुष्ठान - मात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति ।। १५

समस्त - शोक - शमनमानन्दादि - विभूतिदम् ।
तत्त्व - ज्ञान - मयं साक्षाद् विमुक्ति-फल-दायकम् ।। १६

स्नानादि मानसं शौचं मानसश्च जपः स्मृतः ।
पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ।। १७

सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ।
न विशेषो दिवा-रात्रौ न सन्ध्यायां महा-निशि ।। १८

वस्त्रासन - स्थान - गेह - देह - स्पर्शादि-वारिणः ।
शुद्धिं न कारयेद् देव ! निर्विकल्प - मनश्च यः ।। १९

नात्र शुद्धाद्यपेक्षाऽस्ति न च मद्यादि-दूषणम् ।
सर्वदा पूजयेद् देवीमस्नातः कृत - भोजनः ।। २०

महा - निश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।
स्त्री-द्वेषो नैव कर्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियाः ।। २१

तासां प्रहार-निन्दां च कौटिल्यमप्रियं तथा ।
सर्वथा नैव कर्तव्यमन्यथा सिद्धि - रोध - कृत् ।। २२

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम् ।
स्त्री-सङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्व - स्त्रिया सह ।। २३

तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम् ।
तद्धस्तावचितं द्रव्यं देवताभ्यो निवेदयेत् ।। २४

महा-चीन-द्रुम-लता - वेष्टितः साधकोत्तमः ।
रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं दुर्लभं तस्य किं भवेत् ।। २५

महा-चीन - द्रुम-लता-वेष्टनेन च यत् फलम् ।
तस्यापि षोडशांशेन कलां नार्हन्ति ते शवाः ।। २६

शवासनाधिक-फलं लता-गेह - प्रवेशनम् ।
श्मशानालयमागत्य मुक्त - केशो दिगम्बरः ।। २७

महा-चीन-द्रुम-लता-वेष्टितो मुक्तिमाप्नुयात् ।
जप - स्थाने महा - शङ्खं निवेश्यार्द्धं जपं चरेत् ।। २८

स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् यत्र तत्रापि साधकः ।
भक्षं ताम्बूलमन्यांश्च भक्ष्य-द्रव्यान् यथा - रुचीन् ।। २९

भुक्त्वाचा शेष-द्रव्याणि दत्वा भक्षन् चरेज्जपः ।
दिक्काल-नियमो नास्ति स्थित्यादि-नियमो न च ।। ३०

न जपे काल - नियमो नार्चादिषु बलिष्वपि ।
स्वेच्छा - नियम - युतोऽत्र महा - मन्त्रस्य साधने ।। ३१

नाधर्मो जायते नात्र किञ्चिद् धर्मो महान् भवेत् ।
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेद् हृष्ट - मानसः ।। ३२

कृतार्थं मन्यमानस्तु सन्तुष्टो निज-मानसः ।
सुगन्धि - श्वेत - लौहित्य - कुंकुमैरर्चयेच्छिवाम् ।। ३३

बिल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसी - वर्जितैः शुभैः ।
एक-लिङ्गे श्मशाने वा निर्जने वा चतुष्पथे ।। ३४

तारिण्याश्च दिवा - रात्रिस्तच्चतुष्पथमुच्यते ।
तत्रस्थः साधयेद् योगी तारां भुवन-तारिणीम् ।। ३५

तारिणी दक्षिणा काली भैरवी सुन्दरी तथा ।
महा - चीन - क्रमेणैव सु - सिद्धयन्ति न संशयः ।। ३६

सुन्दरी - भैरवी-देव्याः प्रकारोऽन्योऽपि विद्यते ।
तारिणी दक्षिणा - सिद्धिर्नैव चीन - क्रमं विना ।। ३७

महा-चीन - क्रमाचार - तत्परः साधकोत्तमः ।
तारिणी-पूजनं विद्या - कुल-कोटिं समुद्धरेत् ।। ३८

नन्दन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा ।
अपि नः स्व-कुले कश्चित् कुल-ज्ञानी भविष्यति ।। ३९

अज्ञात्वा कुल-शास्त्राणि यः करोति स पातकी ।
ज्ञात्वा कुल - शास्त्राणि च स एव साधकोत्तमः ।। ४०

स धन्यः स चिर-ज्ञानी स कविः स च पण्डितः ।
स कुलीनः स सुकृती स शिवः स च साधकः ।। ४१

स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्नि-होता स दीक्षितः ।
स तीर्थ - वासी सर्वेषु स विलासी स सर्वदः ॥ ४२
स व्रती सोम-पायी च स यज्वा सर्व - मन्त्रिषु ।
स संन्यासी स योगी स च मुक्तः स च ब्रह्म-वित् ॥ ४३
स वैष्णवः स शैवश्च स सौरः स च गाणपः ।
महा - चीन - क्रमाचारैस्तारिणीं यः सदा भजेत् ॥ ४४

॥ इति महा-चीनाचार-सार-तन्त्रे सर्वाचार-सारोत्तमे
महा - चीनाचार-क्रमे द्वितीयः पटलः ॥

तृतीयः पटलः

कुल-धर्म-महिमा

श्रीशिव उवाच—

इति तस्य वचः श्रुत्वा हरेर्बुद्ध-शरीरिणः ।
वशिष्ठस्तं पुनः प्राह कृताञ्जलि-पुटो मुनिः ॥ १

श्रीवशिष्ठ उवाच—

भगवन् ! देव-देवेश ! तत्व-ज्ञान-मय ! प्रभो !
महा-चीन-क्रमाचारः कथितो भवता मम ॥ २

प्रधानं द्वयमेवास्मिन् मदिरा योषिदेव च ।
एतयोः किं प्रधानं हि तद् ब्रूहि मे परमेश्वर ॥ ३

श्रीभगवानुवाच—

एतस्मिन् परमाचारे तुल्यमेव द्वयं मुने !
प्राधान्यं योषितां किन्तु देवादपि न संशयः ॥ ४

यतो हि योषितां देहे सर्व - देवस्य संस्थितिः ।
अतः पूजासु सर्वासु तासां प्राधान्यमुच्यते ॥ ५

श्रीवशिष्ठ उवाच—

ब्रूहि देव ! विधानं च सर्व-ज्ञान-मय प्रभो !
यथा योषित्सु तत्-पूजां कुर्यात् साधक-सत्तमः ॥ ६

श्रीभगवानुवाच—

योनि-पूजा-विधिं वक्ष्ये शृणुष्व मुनि-पुङ्गव !
योनि-पीठे मन्त्र - पीठे मनः-पीठे च सर्वदा ॥ ७

त्रिधाभिश्च महा - माया पूज्यते साधकोत्तमैः ।
सर्वेषामेव पीठानां प्रधानं योनि-पीठकम् ॥ ८

तत्र सम्पूजिता देवी झटित्येव प्रसीदति ।
अणिमाद्यष्ट-सिद्धीनां परमं कारणं मुने ।। ९
योनि-पूजा-विधिं सम्यक् मम सर्वार्थ-साधनम् ।
नटी कापालिनी वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।। १०
ब्राह्मणी शूद्र-कन्या च तथा गोपाल - कन्यका ।
माला-कारस्य कन्या च नव-कन्याः प्रकीर्तिताः ।। ११
विदग्धा सर्व-जातीया मन्त्र - युक्ता च तत्परा ।
गुरु-पाद-गता ग्राह्या नान्यथा वर - वर्णिनि ।। घ
अन्यथा तु वरारोहे ! नरके पतति ध्रुवम् ।। ङ
आनीयान्यतमां भद्रामेकशः कुल-नायिकाम् ।
सुन्दरीं यौवनोन्मत्तां निर्लज्जां चारु-हासिनीम् ।। १२
कृत्वा दिगम्बरीं तां च गन्ध - चन्दन-कुंकुमैः ।
अनु-लिप्तां मुक्त-केशीं ततस्तद् - योनि-मण्डले ।। १३
गुरु-भक्ति-क्रमेणैव पूजयित्वा षडङ्गकम् ।
पीठ - पूजां विधायाथ तन्मध्ये पूजयेच्छिवाम् ।। १४
तत्र चावाहनं नास्ति जीव-न्यासो न चेश्वरीं ।
उपचारैः पूजयित्वा चार्घ्यं दत्वा ततः पुनः ।। १५
जप्त्वा लिङ्गे भैरवं च पूजयित्वा महेश्वरम् ।
गन्धासवाक्षतैः पुष्पैर्होमं कुर्यादतः परम् ।। १६
धर्माधर्म - हविर्दीप्तमात्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्णा-वर्त्मना नित्यमक्ष-वृत्तौ जुहोम्यहम् ।। १७
स्वाहान्तो होम-मन्त्रोऽयं प्रतिघाताहुतिं मुने !
ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् देवीं त्रि-भुवनेश्वरीं ।। १८

पूर्णाहुतिं रमन्ते च जुहुयान्मनुनाऽमुना ।
प्रकाशाकाश - हस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा ॥ १९
धर्माधर्म - कला - स्नेह - पूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् ।
स्वाहान्तोऽयं भवेन्मन्त्रो त्व घोर - यति - मुक्तिदः ॥ २०
पूजा - कालं विना नैव पश्येच्छक्तिं दिगम्बरीम् ।
पूजा-कालं विना नैव सुरा पेया च साधकैः ॥ २१
आयुषा हीयते दृष्ट्वा पीत्वाऽपि नरकं व्रजेत् ।
सुखाभिलषतो दृष्ट्वा पीत्वा नपुंसतां व्रजेत् ॥२२
शक्त्युच्छिष्टं विना चैव ये पिबन्ति नराधमाः ।
सौत्रामण्यां कुलाचारे ब्राह्मणः प्रपिबेत् सुराम् ।
अन्यत्र कामतः पीत्वा प्रायश्चित्ती भवेद् ध्रुवम् ॥ २३
भार्गवेण सुरा शप्ता श्रुत्वा देवो च वारुणी ।
ब्रह्म-लोक-गुरुः साक्षात् प्रययौ भार्गवान्तिकम् ॥ २४
प्रसाद्योवाच तं ब्रह्म-वाचा पीयूष-कल्पया ।
देवानाममृतं ब्रह्मन् ! तदियं लौकिकी सुरा ॥ २५
ब्रह्म-ज्ञान-मयी देवी कुलाचारेण कृष्यते ।
सौत्रामण्यां च देवास्तु तृप्यन्ते सुरयैव हि ॥ २६
सेयं शप्ता त्वया ब्रह्मन् ! तस्याः शापं प्रमोचय ।
ब्रह्माणं प्रणिपत्याह ततोऽसौ भृगु-नन्दनः ॥ २७
मद्-वाक्यं विफलं न स्याद् विज्ञानं च पितामह !
आवश्यकं करिष्यामि तदर्थं नियमः कृतः ॥ २८
सौत्रामण्यां कुलाचारे सुरा-शाप - विमुक्तये ।
मन्त्र - क्रमं प्रवक्ष्यामि शृणु चैक-मना भव ॥ २९

एकमेव परं ब्रह्म स्थूल - सूक्ष्म - मयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्म-हत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ।। ३०

सूर्य - मण्डल - सम्भूते ! वरुणालय - सम्भवे !
अमा-बीज-मये देवि ! शुक्र - शापाद् विमुच्यताम् ।। ३१

वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्द - मयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवशि ! ब्रह्म - हत्यां व्यपोहतु ।। ३२

इत्युक्त्वा ब्रह्मणो मन्त्रान् भार्गवः प्रणिपत्य तम् ।
जगाम भवनं देवि ! ब्रह्मा स्व - भवनं ययौ ।। ३३

केवलेनाद्य - भावेन साधको भैरवः स्वयम् ।
द्वितीयेन तु तत्त्वेन पूजको ब्रह्म-रूप-भाक् ।। ३४
तृतीयेन तु तत्त्वेन महा - भैरवतां व्रजेत् ।
चतुर्थेन तु तत्त्वेन भुवि पूजक - नायकः ।। ३५

परेण परतां याति शिव-तुल्यो मही-तले ।
पञ्च-तत्त्वैर्भवेद् योगी सर्व - सिद्धि - परायणः ।। ३६

ब्रह्म-ज्ञानी कुलाचारे सुरां पीत्वा स्खलन् मुहुः ।
भू-तले पतितो यस्तु स शिवो नात्र संशयः ।। ३७

भू-तले पतितस्याङ्गे प्रलग्ना ये च रेणवः ।
तावत् कालं रेणु - संख्यं देवी - लोके महीयते ।। ३८

प्रायश्चित्तं भृगोः पातं संन्यासं व्रत-धारणम् ।
तीर्थ-यात्राभिगमनं कौलः पञ्च विवर्जते ।। ३९
केवलं पञ्चमैर्वापि सिद्धो भवति साधकः ।। ४०

पीत्वा पीत्वा पुनः पातयित्वा मही-तले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।। ४१

पीत्वालिङ्ग्य कुलाचारां प्रमदां यौवनान्वितां ।
कोटि - जन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत् ।। ४२

पीत्वा पीत्वा जपित्वा च मुक्तः कोटि-कुलैर्युतः ।
ब्रह्म - लोके वसेद् देवि ! सत्यं सत्यं न संशयः ।। ४३

तत्रैव व्याप्तिमाप्नोति न पुनर्जायते भुवि ।
(अत्र मुक्तिमवाप्नोति न पुनर्योनिजो भवेत् ।)
पीत्वा च पूजयेद् देवीमीश्वरत्वं भवेद् ध्रुवम् ।। ४४

तत्रैव लयमाप्नोति पुनर्नैव निवर्त्तते ।
पीत्वाऽग्नि-कुण्डे हुत्वा च त्रैलोक्यैश्वर्य-भाजनः ।। ४५

जायते साधकः सर्वो महा-योगी महा-सुखी ।
पीत्वा योगी योजयित्वा सोऽहं गच्छति तत्परः ।। ४६

(पीत्वा योगी च भोगी च सोहं हंसस्ततः परं ।।)
स्वाहेति जायते वीरो जीवन्मुक्तो जगत्-त्रये ।

चिरञ्जीवी जरा - मुक्तो विमुक्तः सर्व-पातकैः ।। ४७

बलादति-बलं चैव सिद्धित्वं समवाप्य च ।
अणिमादि-युतोऽपि स्यात् सत्यं सत्यं न संशयः ।। ४८

इति ते कथितं गुह्यं सुरा-शाप - विमोचनम् ।
इत्येवं कथिता तुभ्यं यथा पूज्या दिगम्बरी ।। ४९

पूजयित्वा सकृद् देवीं मुच्यते हि महा-भयैः ।
एवं देवीमर्चयित्वा किमसाध्यं जगत्-त्रये ।। ५०

हरे प्रकुपिते भूत्वा पूजयित्वा दिगम्बरीम् ।
सृष्टि-स्थिति-लयादीनां कर्ताऽभूज्जगदीश्वरः ।। ५१

रोगेभ्यो घोर-रूपेभ्यः पूजयित्वा विमुच्यते ।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत् ।। ५२

आरभ्य शुक्ल-प्रतिपद् यावत् पञ्चदशी भवेत् ।
प्रत्यहं पूजयेद् यस्तु तिथि - संख्या दिगम्बरीम् ।। ५३

सर्व-सिद्धिर्भवेत् तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ।
वीर-साधन-कर्माणि दुःख-साध्यानि केवलम् ।। ५४

सुख-संसाधनं ह्येतत् तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत् ।। ५५

इत्येतत् कथितं तुभ्यं पूजा-विधिमनुत्तमाम् ।
साधनं सर्वथा चैतां गोपयेन्मातृ - जार-वत् ।। ५६

।। इति महा-चीनाचार-सार-तन्त्रे सर्वाचार-सारोत्तमे
महा-चीनाचार-क्रमे तृतीयः पटलः ।।

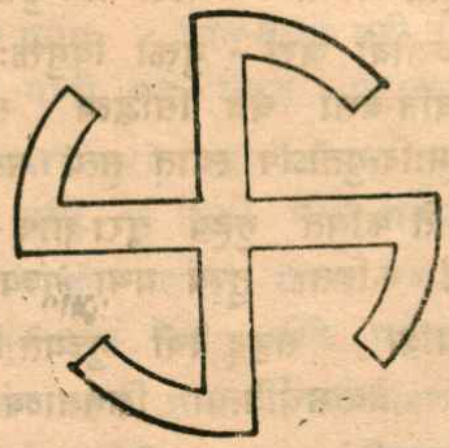

चतुर्थः पटलः

कुल-द्रव्य-विधानम्

श्रीवशिष्ठ उवाच—

कुलेशान ! पात्राणि च पिशितानि च लक्षणम् ।
कुल - द्रव्यस्य निर्माणं वद माहात्म्यमेव च ।। १

अविधानेन यत् पापं स-विधानेन यत् फलम् ।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि वद मे करुणानिधे ।। २

श्रीबुद्ध उवाच—

मुने ! शृणु प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परि-पृच्छसि ।
तस्य श्रवण - मात्रेण त्रि - दशैः समतां व्रजेत् ।। ३

आधारेण बिना पात्रं न च तृप्यन्ति मातरः ।
तस्माद् - विधि-वदाधारं कल्पयेत् कुल-नायकः ।। ४

आधारं त्रिपदं प्राहुः षट् - पदं वा चतुष्पदम् ।
अथवा वर्तुलाकारं कुर्यादति - मनोहरम् ।। ५

स्वर्ण-रौप्य-शिला-कूर्म - कपालालाबु-मृण्मयम् ।
पुण्य - वृक्ष - समुद्भूतं पात्रं कुर्याद् विचक्षणः ।। ६

अति-सूक्ष्ममति-स्थूलं छिन्न-भिन्नं च वर्जयेत् ।
सुवर्ण-रत्न-पात्राणि सर्व - सिद्धि - कराणि च ।। ७

कुल-द्रव्यं प्रवक्ष्यामि मुने ! शृणु समाहितः ।
अम्भसां द्वादशं प्रस्थं प्रस्थार्द्धं तक्रमेव च ।। ८

तण्डुलानां चतुः-प्रस्थं द्वि-प्रस्थं पयसस्तथा ।
मुष्टि - मात्रांकुरो देयं एकस्मिन् योजयेद् घटे ।। ९

शीतादि - रहिते स्थाने स्थापयेद् दिवस-त्रयम् ।
ततो वह्नौ समारोप्य जम्बाल - सदृशं पचेत् ॥ १०

अवरोप्य पुनः शीतामवस्थां तां नयेद् बुधः ।
पयः-प्रस्थेन पृष्ट्वा तु हस्ताभ्यां मेलयेत् ततः ॥ ११

सम्यक् सम्मर्द्य तक्रेण पयसाऽऽलोडच मेलयेत् ।
एषा तु पेष्टी विख्याता पूजिता देव-दानवैः ॥ १२

कुल-पूजां विना स्वार्थं यः करोति स दुर्मतिः ।
प्रयाति नरकं घोरमेक - विंशतिभिः कुलैः ॥ १३

देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य मुने ! शास्त्रोक्त-वर्त्मना ।
गुरुं स्मरन् पिबन् मद्यं खादन् मांसं न दोष-भाक् ॥ १४

सेवते चेत् सुखार्थाय मद्यादीन् स च नारकी ।
प्राशयेद् देवता - प्रीत्यै स्वाभिलाषं विवर्जयेत् ॥ १५

श्वपचोऽपि कुल - ज्ञानी ब्राह्मणादति - रिच्यते ।
यः कौलिकः कुल - ज्ञानं न पश्यति न विन्दति ।
धिक् तस्य जीवनं लोके धिक् तस्यापि च पौरुषम् ॥ १६

ते धन्याः पुण्य-कर्माणस्ते शान्तास्तेऽपि योगिनः ।
येषां चित्ते भाग्य-वशात् कुल-ज्ञानं प्रकाशते ॥ १७

ते वन्द्यास्ते महात्मानः सुकृतार्था नरोत्तमाः ।
येषामुत्पद्यते चित्ते कुल-ज्ञानं मयोदितम् ॥ १८

त्रासिता हि मया पूर्वं पशवः शास्त्र-कोटिभिः ।
कुल-धर्मं न जानन्ति ततो ज्ञानाभि-मानिनः ॥ १९

पशु-शास्त्राणि सर्वाणि मयैव कथितानि वै ।
स्मृत्युक्तेन च मन्त्रेण मोहनाय दुरात्मनाम् ॥ २०

महा - पाप - प्रसक्तानां तेषां वाञ्छाऽपि जायते ।
तेषां च सद्-गतिर्नास्ति कल्प-कोटि-शतैरपि ॥ २१

बहुशः कौलिकं धर्मं श्रुत्वा ज्ञान - विभेदकम् ।
निन्दन्ति ह्रस्व-बुद्धयै च पारम्पर्य - विमोहिताः ॥ २२

श्रीवशिष्ठ उवाच—

मद्य - पानेन मनुजा यदि सिद्धयन्ति केवलैः ।
मद्य-पान - रताः सर्वे सिद्धिं यान्तु च पाशवाः ॥ २३

मांस-भोजन - मात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत् ।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्य-भाजा भवन्ति वै ॥ २४

स्त्रियो भोगे कौलिकानां यदि मोक्षो भवेदिह ।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके मुक्ताः स्युः स्त्री-निषेवणात् ॥ २५

श्रीबुद्ध उवाच—

अतः शृणुष्व त्वं पुत्र ! कुल - धर्मं महा-लयम् ।
मोक्षं ददाति वै तारा एतद्-धर्म-प्रवर्तिनाम् ॥ २६

वृथा पानं यत् क्रियते सुरा - पानं तदुच्यते ।
स महा - पातकी चैव वेदादिषु निरूपितः ॥ २७

श्रीवशिष्ठ उवाच—

त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि कुल-धर्मं विशेषतः ।
एतस्य तु विशेषस्तु तत्-समो नास्ति कश्चन ॥ २८

तस्य धर्मस्य माहात्म्यं सर्व - धर्मोत्तमस्य च ।
वद मे परमेशान ! यदि चास्ति कृपा मयि ॥ २९

श्रीबुद्ध उवाच—

मुने ! शृणु प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवण - मात्रेण योगिनीनां प्रियो भवेत् ॥ ३०

शिवो ब्रह्मन् ! महा-योगी यन्मया कथितं पुरा ।
कथयामि तव स्नेहाच्छृणुष्वैकाग्र - मानसः ।। ३१

पारम्पर्य - क्रममयमति - गोप्यमत्यद्भुतम् ।
अकथ्यं पारमार्थ्येनं तथापि कथयामि ते ।। ३२

सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवोत्तमः ।
वैष्णवादुत्तमः शैवः शैवाद् दक्षिणमुत्तमम् ।। ३३

दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् ।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात् पर-तरं न हि ।। ३४

गुह्याद् गुह्य-तरं वत्स ! सारात् सार-तरं परम् ।
मथित्वा ज्ञान -मन्थेन वेदागम - महार्णवम् ।। ३५

सारं तेन मया सोऽयं कुल - धर्म समुद्धृतः ।
एकतः सकला धर्मा यज्ञ - तीर्थ-व्रतादयः ।। ३६

एकतः कुल-धर्मोऽयं सर्व-यज्ञाधिक-प्रियः ।
प्रविश्यन्ति यथा नद्यः समुद्रे वेगतो स्थिताः ।। ३७

तथैव समयाः सर्वे प्रविष्टाः कुल - वर्त्मनि ।
यथा हस्ति-पदे लीनं सर्व - प्राणि-पदं भवेत् ।। ३८

दर्शनानि च सर्वाणि कुल-त्रयः तथा मुने !
यथामर - तरङ्गिण्या न समा सफलोपगाः ।। ३९

तथैव समयाः सर्वे कुल - धर्मेण सेवकाः ।
मेरु - कार्य पयो मूर्ध्नि सूर्यो मुख्य-तरो यथा ।। ४०

तथाऽस्य समयश्चास्य कुलस्य महदन्तरम् ।
अस्ति चेज् ज्ञानवान् कश्चिन्मत्-समो भुवि मानसः ।। ४१

तथैव कुल - धर्मेण समो नास्ति जगत् - त्रये ।
जन्मभिर्बहुभिर्मानैः तपोभिर्मुनि - सत्तम ।। ४२

मोक्षं लभन्ते ते सर्वे जीवन्मुक्तास्तु कौलिकाः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४३
बहुनाऽत्र किमुक्तेन शृणु त्वमवधानतः ।
न कौलेन समो धर्मः सत्यमेतद् वदामि ते ॥ ४४

योगी चेन्नैव भोगी स्याद् भोगी चेन्न तु योग-वित् ।
योग-भोगात्मकं कौलं तस्मात् सर्वाधिकं स्त्विदम् ॥ ४५
॥ इति महा-चीनाचार-सार-तन्त्रे सर्वाचार-सारोत्तमोत्तमे महा-चीनाचार-क्रमे चतुर्थः पटलः ॥

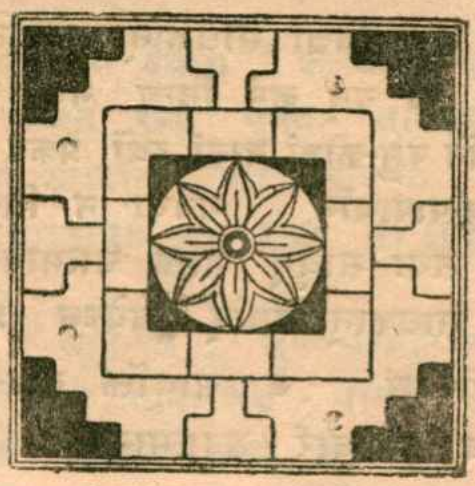

पञ्चमः पटलः

समयाष्टकम्

श्रीबुद्ध उवाच—

समयाष्टकं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्र-मानसः ।
येन विज्ञान-मात्रेण सिद्धो भवति साधकः ।। १
घातयेद् गोपयेद् वै न निन्दयेन्न विलोकयेत् ।
पूजयेद् भावयेच्चैव वर्जयेन्न जुगुप्सयेत् ।। २
कामं क्रोधं च मात्सर्यं विकारं चेन्द्रियोद्भवम् ।
निद्रां लज्जां दौर्मनस्यं घातयेदष्टकं प्रिये ।। ३
मन्त्रं मुद्राक्ष - सूत्रे च योगिनी-वीर - सङ्गमम् ।
भैरवागममाचारमेतत् सर्वं प्र-गोपयेत् ।। ४
देवं गुरुं सुरां विद्यां साधकान् योषितांस्तथा ।
शुभाशुभं च यत् कर्म निन्द्यं नैव कदाचन ।। ५
कन्या-योनिं पशु-क्रीडां नग्नां स्त्रीं प्रकट-स्तनीम् ।
द्यूत-विग्रह-पापार्थान् सर्वथा न विलोकयेत् ।। ६
गुरुं देवीं तथा साधून् शक्तिं चात्मानमव्ययम् ।
भक्तितः साधकान् सर्वान् पूजयेच्च प्रयत्नतः ।। ७
गुरु-वाक्योपदेशं च साधूक्तिं इष्ट-देवताम् ।
स्व-धर्मं च कुलाचारं सदात्मानं च भावयेत् ।। ८
अगम्या-गमनं चैव धूर्तमुन्मत्त-वञ्चकम् ।
अनृतं पाप-गोष्ठीं च वर्जयेत् सिद्धि-साधकः ।। ९
विण्मूत्रं शोणितं क्लेदं हीनाङ्गीं पिशितं सुराम् ।
कपाल - हरणं चैव अष्टौ नैव जुगुप्सयेत् ।। १०

इत्येवं समयाचारं यः करोति हि साधकः।
सम्प्राप्य देवी-सम्भावं जीवन्मुक्तिं च गच्छति ॥ ११

एवं भाव-मतं प्रोक्तं सर्व-सिद्धिरनुष्ठितम्।
अनेन चीनाचारेण साधकः स्वयमीरितः ॥ १२

इत्येवं समयाचारं यः करोतीह साधकः।
यद् यै न लभते वस्तु तन्नास्ति भुवन-त्रये ॥ १३

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव ! महादेव ! जगत्-प्रलय - कारक !
कुलाचारेण मद्याद्यैः कथं सिद्धिर्भवेत् प्रभो ॥ १४

यदेतन्मदिरा-पानं यत् पर-स्त्री-निषेवणम्।
अधर्म - कारणं सर्वं छिन्धि मे संशयं प्रभो ॥ १५

श्रीशिव उवाच—

साधु पृष्टोऽस्मि देवेशि ! कथयामि शृणुष्व मे।
पुरा दारु-वने रम्ये मुनयः साधकाः पराः ॥ १६

पर-स्त्रियं धर्षयन्ति मद्यं खादन्ति मोहिताः।
तद् दृष्ट्वाऽनुचितं कर्म ब्रह्मा मां समुपस्थितः ॥ १७

श्रीब्रह्मोवाच—

देव-देव ! महा-देव ! सृष्टि-स्थिति-लयात्मक !
एते दारु - वने पापा मद्य - पान - रतास्तथा ॥ १८

परं-स्त्रियं धर्षयन्ति मद्यं खादन्ति नित्यशः।
दिगम्बराश्च मुण्डाश्च गतिरेषां कथं भवेत् ॥ १९

इति ब्रह्मा - वचः श्रुत्वा तमुवाच ह्यहं प्रिये !
'पितामह ! न जानासि चीनाचार-क्रमं भवान् ॥ २०

उग्र-तारां महा-विद्यामेते नित्यं जपन्ति हि।
पूजयन्ति च तामेव चीनाचार-परायणाः ॥ २१

साधकाः सर्वे एवैते महात्मानो महाशयाः ।
जीवन्मुक्ति-गताः सर्वे देवी-भक्ति-परायणाः ॥ २२

पर-स्त्री-धर्षणाच्चैव मद्य-पानाच्च नित्यशः ।
अश्व-मेधादप्यधिकं लभन्ते फलमुत्तमम् ॥ २३

एतांस्तु निन्दयन्मोहान्महा-पातक-वान् भवेत् ।
इतो दूरं प्रयाहि त्वं न मां स्पृश पितामह' ॥ २४

इत्येवमुक्तः स मया ब्रह्मा लोक - पितामहः ।
परं विस्मयमापन्नः संशयाविष्ट-मानसः ॥ २५

किमिदं शम्भुना प्रोक्तं वेदाचार-विरोध-कृत् ।
इति सञ्चिन्तयन्मौनं प्राप पङ्कज - सम्भवः ॥ २६

ततो वैकुण्ठमासाद्य श्रीविष्णुं परमेश्वरम् ।
कृताञ्जलि-पुटो नत्वा सर्वमेतदुवाच सः ॥ २७

देव-देव ! महा - विष्णो ! संसार-स्थिति-कारक !
छिन्धि मे संशयं देव ! महान् न मनसेप्सितम् ॥ २८

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता कश्चिन्न विद्यते ।
तीर्थ-पर्यटनायाद्य गतं दारु-वनं मया ॥ २९

तत्र सर्वे मुनि - गणाः पर - स्त्री-धर्षणे रताः ।
मदिरा - पान-सञ्जाता मधु - घूर्णित - लोचनाः ॥ ३०

रममाणा पर-स्त्रीभिर्निर्लज्जाः सर्व एव हि ।
एवं तान् स-दुराचारान् दृष्ट्वा कैलास-वासिनः ॥ ३१

महा - देवमवोचं तत् सर्वमेव दया-निधे !
पापाचारानपि मुनीन् सु-प्रशंस महेश्वरः ॥ ३२

कृपयाविष्ट-मानास्तानुद्दिश्य च पुनः पुनः ।
उवाच साधवस्ते वै जीवन्मुक्ता महाशयाः ॥ ३३

तान् निन्दित्वा महा-पापमभूत् ते दूरतो यत ।
अतोऽहं विस्मयाविष्टः प्राप्तस्त्वं जगदीश्वर ॥ ३४

एतन्मे संशयं छिन्धि करुणा यदि ते मयि ।
एवं स ब्रह्मणा प्राप्तो विष्णुः सर्वेश्वरः प्रभुः ॥ ३५

भक्त्या परमया युक्तस्तान् मुनीन् प्रणमाम्यहम् ।
उवाच विधातारं तत्व-ज्ञान-मय वचः ॥ ३६

त्वया दारु-वने द्रष्टा मुनयो ये पितामह !
तारामाराधयन्त्येते सर्वे साधक - सत्तमाः ॥ ३७

पर-स्त्रियं धर्षयन्ति मद्यं खादन्ति नित्यशः ।
निर्वाणं येन यास्यन्ति भगवत्याः प्रसादतः ॥ ३८

चीनाचारं समाश्रित्य मुनयस्ते महाशयाः ।
तत्व-ज्ञान-मयाः सर्वे विहरन्ति मही-तले ॥ ३९

त्वमाशु गच्छ तत्रैव तान् प्रसादय पद्मज !
तेषु रुष्टेषु भवतो ब्रह्मत्वमपि यास्यसि ॥ ४०

महा-देवेन यत् प्रोक्तं सत्यमेतन्न संशयः ।
आवयोः स न संस्पृशेत् साधकान् यो विनिन्दति ॥ ४१

श्रीशिव उवाच--

ततो विष्णुं प्रणम्यासौ परमेष्ठी पितामहः ।
गत्वा दारु-वनं सर्वान् प्रणनाम मुनीश्वरान् ॥ ४२

तुष्टाव परया भक्त्या स्तोत्रैर्बहु-विधैरपि ।
तेषां प्रसादमासाद्य कृत-कृत्योऽभवद् विधिः ॥ ४३

श्रीदेव्युवाच—

महा-चीन-क्रमाचारं ततो बुद्धात् प्राप्य तु ।
वशिष्ठः स किमकरोत् तन्मे ब्रूहि महेश्वर ।। ४४

श्रीशिव उवाच—

महा-चीन-क्रमाचारं ततो बुद्धात् प्राप्य सः ।
नीलाचलं समासाद्य चीनाचार - परायणः ।। ४५

ततोऽक्ष-मालां युवतीं चाण्डालीं वशयन्मुनिः ।
जपन् संसाधयामास तारां मुक्ति - प्रदायिकाम् ।। ४६

मदिराभिरनेकाभिर्मद - घूर्णित - लोचनः ।
तारामाराधयामास कृत-कृत्योऽभवत् तदा ।। ४७

साक्षाद्-भूता महा-देवी तारा संसार-तारिणी ।
तामुवाच 'वशिष्ठ ! त्वं वरान् वृणु यथेप्सितान्' ।। ४८

श्रीवशिष्ठ उवाच—

तारा - देवि ! जगन्मातर्ज्ञान - विज्ञान - दायिनि !
वरमेकं वृणोमि त्वं प्रसन्ना यदि मे शिवे ।। ४९

महा - चीन - क्रमाचारैर्यस्त्वां - सम्पूजयिष्यति ।
सर्वदा तस्य मातस्त्वं सुप्रसन्ना भविष्यति ।। ५०

श्रीतारा उवाच—

चीनाचारेण यः कश्चित् तारां मां पूजयिष्यति ।
स मे पुत्रत्वमागम्य सत्यं सत्यं न संशयः ।। ५१

इह भोगान् वरान् भुक्त्वा बृहस्पतिरिवापरः ।
अन्ते यास्यति मत्-पार्श्वं यत्र मे गण - नायकाः ।। ५२

रूप - यौवन - सम्पन्नैर्दिव्य - कन्या - गणैः सह ।
विहरत्यप्यसौ वीरो यावच्चन्द्रार्क - तारकाः ।। ५३

तवापि भविता वत्स ! योग-सिद्धिरनुत्तमा ।
अणिमाद्या सिद्धयस्त्वां सेविष्यन्ति निरन्तरम् ॥ ५४

श्रीभगवानुवाच—

इति लब्ध-वरस्त्वस्या वशिष्ठोऽसौ महा-मुनिः ।
नक्षत्र-लोकमासाद्य चाद्यापि द्योतते दिवि ॥ ५५

एवं ते कथितो देवि ! चीनाचारः सु-दुर्लभः ।
समाचरन् साधकेन्द्रो भुक्ति-मुक्तो लभेद् भुवि ॥ ५६

एतत् सर्वं प्रयत्नेन गोपितव्यं त्वया प्रिये !
यथा ह्यन्यो न लभते तथा कार्यं महेश्वरि ॥ ५७

स्व-योनिरिव गोप्तव्यं देवेशि ! पशु-[illegible]न्निधौ ।
यो भक्तः साधको ज्ञानी तस्मै वक्तव्यमेव हि ॥ ५८

[आलिङ्गनं चुम्बनं च स्तनयोर्मर्दनं तथा ।
दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकाशो लिङ्ग-घर्षणम् ।
प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नव पुष्पाणि पूजने ॥ १

विषं पीत्वा सुरां भक्त्वा गत्वा रजस्वलाम् ।
यो जपेच्चण्डिकां देवीं तस्य दुःखं पदे पदे ॥ २

देया विद्यार्थिने विद्या व्याधितेभ्यश्च ओषधम् ।
देयं क्षुधार्थिने अन्नं त्रयः स्वर्गस्य लक्षणम् ॥ ३]+

॥ इति महा-चीनाचार-सार तन्त्रे सर्वाचार-सारोत्तमोत्तमे
महा-चीनाचार-क्रमे पञ्चमः पटलः ॥

+ कोष्ठक के अन्दर के तीन श्लोक हस्त-लिखित पाण्डु-लिपि में नहीं हैं। बँगला में प्रकाशित 'तन्त्र-संग्रह' (अब अप्राप्य) में ये प्रकाशित रहे हैं।

षष्ठः पटलः

रहस्य-विधान-वर्णनम्

श्रीशिव उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं शृणु पार्वति !
योनि-मण्डलमास्थाय मूल-मन्त्रं जपेत् तु यः ॥ १
षण्मासैः सिद्धिमाप्नोति बिना होमार्चनादिभिः ।
योनि-मुद्रां विजानाति मूल - विद्यां शृणोति यः ॥ २
तस्याचिरादष्ट-सिद्धिस्तन्नास्ति यन्न साधयेत् ।
यदि भाग्य - वशादेव योनि - मुद्रावलोकनम् ॥ ३
प्रणम्य दण्ड-वद् भूमौ मनसा जपमाचरेत् ।
भग-रूपा महा-देवी योगिनी योनि-रूपिणी ॥ ४
तस्माद् यत्नेन मन्त्रज्ञो महा-मुद्रां समभ्यसेत् ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां मङ्गले शनि-वासरे ॥ ५
योगिनी - कुल - वृक्षैः संस्थिता योनि - मण्डले ।
योनि-मण्डल - तत्वज्ञः कुल - द्रव्य-परायणः ॥ ६
स रुद्र इति विज्ञेयः सर्व-शास्त्रेषु निश्चितम् ।
योनौ तिष्ठत्यासवं च मांसं मत्स्यं तथा मधु ॥ ७
कुलद्रव्याणि चैतानि भक्षयेत् कुल-कौलिकः ।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुन-कर्म च ॥ ८
न सेवते यदा देवि ! स कथं कुल-कौलिकः ?
पञ्च-तत्वं बिना नास्ति शाक्तानां भुक्ति-मुक्तिषु ॥ ९
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन पञ्च-तत्वं निवेदयेत् ।
भगवत्यै भक्षयेच्च तस्यांशं विजितेन्द्रियः ॥ १०

निषेव्य पञ्च-तत्वानि सर्वदानन्द-मानसः ।
कुलाङ्गना - सेवनेन विहरेत् कुल - भैरवः ।। ११

संस्थाप्य चाग्रे कुलजां कुल - पूजा - रतो भवेत् ।
देयं तस्यै पान - मद्यं खाद्यं तन्मुखतः प्रिये ।। १२

प्रवेशे योनि - मुद्रां च जपन्मन्त्रमनन्य-धीः ।
आत्मानं भैरवं मत्वा योनिं भगवतीं तथा ।। १३

भैरवाय सु - सम्पन्नः प्रविशेद् योनि-मण्डले ।
आलिंग्य युवतीं गाढं संचुम्ब्याधरमेव च ।। १४

दन्त-क्षतं नखाघातं तत्र तत्र विनिर्दिशेत् ।
कुलोद्भवेन द्रव्येण तर्पयेत् पूजयेच्च यः ।। १५

स एव साधको ज्ञानी कुल-ज्ञानी न संशयः ।
यदि गच्छेद् भोग-वशे कपटं चैव वारयेत् ।। १६

देवी चण्ड-वती तस्य सर्वं नाशयते ध्रुवम् ।
या शक्तिः सा महा-माया केवलानन्द - रूपिणी ।। १७

तद्-योगेनैव मुक्तः स्यात् साधको वीर-रूप-धृक् ।
इति ज्ञानाज्जपेद् विद्यां केवलं भाव-तत्परः ।। १८

जातिर्न सम्बन्ध-बुद्धिः कदाचिदपि साधकः ।
जाति - सम्बन्धतो देवि ! नरकं प्रति - पद्यते ।। १९

उच्छिष्टं भक्षयेत् तासां ताभ्यो नोच्छिष्टमर्पयेत् ।
शक्त्युच्छिष्टं पिबेद् द्रव्यं वीरोच्छिष्टं तु चर्वणम् ।। २०

शक्ति-वीर-प्रसादेन किं न सिद्धयति भू-तले ।
आनन्द-पूर्ण-हृदयो विहरेत् कुल-भैरवः ।। २१

रक्त - चन्दन - दिग्धाङ्गस्ताम्बूल - पूरिताननः ।
रक्त - माल्याम्बर- धरो रक्त-कौपीन-भूषणः ।। २२

शक्तिमाकृष्य यत्नेन कुलाचार - रतो भवेत् ।
शक्ति-युक्तो जपेत् याम-विधौ केवलं जपेत् ।। २३

यः दिवा प्रजपेन्मोहात् सिद्धि-हानिस्तु जायते ।
तस्माद् यत्नेन मन्त्रज्ञो भवेच्छक्ति - परायणः ।। २४

एतत् तन्त्रं च मन्त्रं च गोपयेन्मातृ-जार-वत् ।
मोहात् प्रकाशादचिरादधो याति न संशयः ।। २५

।। इति महा-चीनाचार-सार-तन्त्रे सर्वाचार-सारोत्तमोत्तमे महा-चीनाचार-क्रमे षष्ठः पटलः ।।

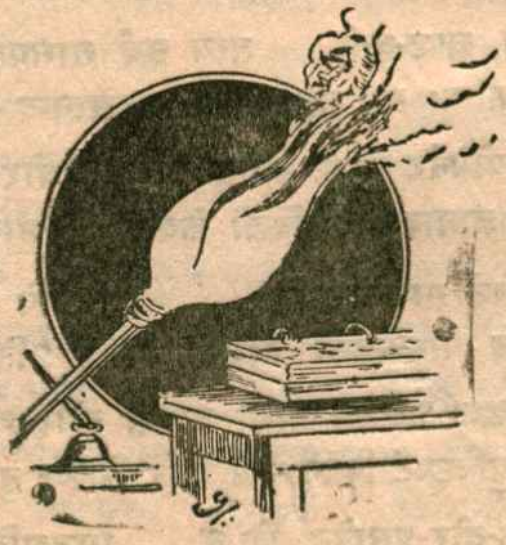

सप्तमः पटलः

विजया-कल्पम्

श्रीदेव्युवाच--

देव-देव ! महा- देव ! महा - कारुणिक ! प्रभो !
योगिनां किं सदा सेव्यं लोकानां बल-पुष्टिदम् ।। १
मनश्चाञ्चल्य - हरणं किं समाधि - फल - प्रदम् ।
वद त्वेतद् विशेषेण यद्यहं तव वल्लभा ।। २

श्रीशिव उवाच--

अकथ्यमेव चार्वङ्गि ! देवासुर - नरेष्वपि ।
कथयामि तव स्नेहाद् गुह्याद् गुह्य-तरं महत् ।। ३
श्रुत्वा त्वयाऽपि गोप्तव्यं यत्नेन पशु - सङ्कटे ।
बलो नाम महानासीदसुरो बलवान् पुरा ।। ४
जित्वा सुर-पतिं सर्वानिन्द्रोऽभूत् स निशाचरः ।
ततः पराजितो शक्रः ... ... ।। ५
पुरन्दर पुरोधाम मं ... ... सु-निश्चितम् ।
तान् यो ... . ।। ६
इति संचिन्त्य सर्वे ते मुनयः परमेश्वरम् ।
संस्तूयमानमृषिभिः सिद्ध - गन्धर्व - सेवितः ।। ७
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं प्रणम्य दण्ड-वद् भुवि ।
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे देवाः शक्र-पुरोगमाः ।। ८
नमोऽस्तु हरये तुभ्यं सर्व - दुःख - हराय ते ।
सुराणामार्ति - नाशाय सर्वेशाय नमो नमः ।। ९

नमस्त्रि - मूर्तये तुभ्यं सृष्टि - स्थित्यन्त - कारिणे ।
गुणातीताय शुद्धाय परतोऽपि पराय च ।। १०
सर्वात्मने नमस्तेऽस्तु सर्व - शक्ति - युताय च ।
सर्वज्ञाय सर्व - लोक - साक्षिणे ते नमो नमः ।। ११

इति स्तुत्वा च सकलं तद्-वृत्तान्तं निवेदयेत् ।
शरणं त्वां गतास्सर्वे त्राहि नस्तं निहत्य च ।। १२

दुराचारो बलो मृत्युं यथा यात पाप-चेतसः ।
रक्षास्माकं च शक्रस्य तथा कर्तुं त्वमर्हसि ।। १३

श्रुत्वेदं वचनं तेषामिदमाह पुरन्दरम् ।
वृत्तान्तमेतज्जानामि बलस्यास्य दुरात्मनः ।। १४

ब्रह्मणा न मयाऽपि न स बध्यः शिवेन वा ।
तयैव बध्यो भविता स दुरात्मा न संशयः ।। १५
एतत् सर्वं महेशाय निवेदयत पुरन्दरः ।
स एव भगवान् सर्वमेतज्जानाति शङ्कर ।। १६

तवाभिगमितं सर्वमविधास्यति गम्यताम् ।
प्रसाद्यतां च यत्नेन त्वयाऽसौ भक्त - वत्सलः ।। १७
अथ प्रणम्य शक्रस्तु समया ते ममान्तिके ।
आगता ... ... प्रणम्य च कृतांजलिः ।। १८

तुष्टाव विविधैस्तोत्रैर्भक्ति - गद्गद - भाषितैः ।
....तन्मां ध्यानोपरतैर्मा ... ... ।। १९
... ... पाठैर्बहु... ... .नि... .... ।
... ...द् विज्ञाय प्रक्रमाद् मत् - सन्निधिम् ।। २०
तस्मै तत् - परमं ज्ञानं दत्वोवाचमिदं वचः ।
त्रैलोक्य - विजया... ... ... येषु दुर्लभे ।। २१

त्रैलोक्ये विजयाऽज्ञानां ज्ञानं नास्ति महेश्वरि !
अशेष - जाड्य - शमनं परमात्म - प्रकाशकम् ॥ २२

अखण्डानन्द - निलयामद्वैत - परमास्पदम् ।
मन - स्थैर्य - करं रोग - शोक - सन्तापमान्तिके ॥ २३

ततो गत्वा वत्सरान्ते स बलो जेष्यते त्वया ।
इत्येवमुक्तः स मया प्राञ्जलिश्चेदमब्रवीत् ॥ २४

शक्र उवाच—

देव- देव ! महा- देव ! सर्वज्ञ ! सर्व-तत्त्व - वित् ।
विधिना केन सेव्येयं को वा मन्त्रेण शोधनम् ॥ २५

तर्पणं स्वीकृतौ मन्त्रं संविदः कृपया प्रभो !
सर्वमेतदशेषेण साङ्गोपाङ्गं वदस्व मे ॥ २६

श्रीशिव उवाच—

शृणु शक्र ! महा - भाग ! सर्वमेतद् वदामि ते ।
श्रुत्वा गोपय यत्नेन तदेवाचर नित्यशः ॥ २७

त्रैलोक्य- विजया सिद्धा सिद्धिः सा सिद्धि-मूलिका ।
ज्ञानं संवित् संविदं च श्यामा भङ्गा रसायना ॥ २८

योगदा योगिनी-ससेव्या योग - मार्ग-प्रकाशिनी ।
ब्राह्मणी ब्रह्म- सम्भूता ब्रह्मानन्द - प्रदायिनी ॥२९

वाग् - देवता - वश - करी विजया विजय - प्रदा ।
समाधि - वरदाऽज्ञान - नाशिनी त्वेक - विंशतिः ॥ ३०

श्वेता रक्ता पीत - कृष्णा पुष्प - भेदाच्चतुर्विधा ।
श्वेत - पुष्पा ब्राह्मणी सा क्षत्रिया रक्त - पुष्पिका ॥ ३१

पीत - पुष्पा तु वैश्या सा शूद्रा च कृष्ण-पुष्पिका ।
आहृत्य पत्राण्येतासां स - वीजानि प्रयत्नतः ॥३२
भर्जितानि घृतेनैव चूर्णितानि शिला - तले ।
त्रि-कटु-त्रिफला - शृङ्गी-कुष्ठ-धन्याक - सैन्धवम् ॥ ३३
शचो - तालीश - पत्राणि कटुक - नाग - केशरम् ।
यकानी - द्वय - मेथीं च जीरक - द्वयमेव च ॥ ३४
एतानि सम - भागानि रौद्र - शुष्कानि चूर्णयेत् ।
गृहीत्वा - चूर्णमेतेषां संचिच्चूर्णं तु तत् - समम् ।
उभयोस्तु समं दत्वा सितां च मिश्रयेद् दृढम् ॥ ३५
मिश्रयित्वा चतुर्थांशं समं मधु घृतं तथा ।
पुनः शिला-तले पिष्ट्वा त्रि - सुगन्धौ प्रवर्तयेत् ॥ ३६
स्वर्णादि - पात्रे पुरतः स्थापयित्वा ततः क्रमात् ।
चतुर्भिर्मनुभिस्तस्या शोधनं समुपाचरेत् ॥ ३७
निवेश्य तत्र पाण्यग्रं यथा - विधि विशोधयेत् ।
ॐ सम्विदे ! ब्रह्म-सम्भूते! ब्रह्म-पुत्रि ! सदानघे ॥३८
भैरवानां च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा ।
ॐ ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा ब्राह्मणी-शोधने मनुः ॥ ३९
सिद्धि - मूल - क्रिये देवि ! हीन-बोध - प्रबोधिनि !
राजा - प्रजा - वशङ्करि शत्रु - कण्ठ - त्रिशूलिनि ॥४०
ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा शोधयेदपरं ततः ।
अज्ञानेन्धन - दीप्ताग्ने ज्वालाग्ने ज्ञान - रूपिणि !
आनन्दस्याहुतिं प्रीतिं सम्यक् ज्ञानं प्रयच्छ मे ॥ ४१

ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा शूद्रिण्यां शोधयेत् ततः ।
नमस्यामि नमस्यामि योग - मार्ग - प्रदर्शिनि !
त्रैलोक्य - विजये मातः ! समाधि - फलदा भव ॥ ४२
क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा शूद्राणी - शोधने मनुः ।
ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृत - वर्षिणि पदं ततः ।
अमृतं स्रावय - द्वन्द्वं सिद्धिं देहि ततः परम् ॥ ४३
अमुकं मे ततो ब्रूयाद् वशमानय ततः परम् ।
द्वि-ठान्तोऽयं मनुः प्रोक्तश्चतुष्कस्य च शोधने ॥ ४४
आनन्द - भैरवानन्द - भैरव्यौ तत्र मन्त्रयेत् ।
शिव - सोमो मातृकान्त - कामरू - पूतनानलम् ॥ ४५
वाम - कर्ण - समायुक्तं वायुमर्द्धेन्दु - संयुतम् ।
आनन्द - भैरवायेति शिखा - मन्त्रं ततो वदेत् ॥ ४६
आनन्द - भैरवस्यायमानन्द - भैरवीं शृणु ।
पूर्व - वद् बीजमालिख्य चन्द्रं हित्वा त्विदं नयेत् ॥ ४७
तत्तन्मन्त्रेण शोधयित्वा समुदायं शोधयेत् ।
मूल - मन्त्रं सप्त - वारं तस्योपरि नियोजयेत् ॥ ४८
सप्तधा तर्पयेद् ब्रह्म - रन्ध्रे मूलं जपन्मनुम् ।
गुरुं पद्मे सहस्रारे तथा सङ्केत - मुद्रया ॥ ४९
त्रि - वारं तर्पयेद् भक्त्या सकृद् वापि निजेच्छया ।
परमाख्यं गुरुं तत्र परापर - गुरुं तथा ॥ ५०
मन्त्रेणानेन भैरव्यौ तर्प्य एतन्मनुं स्मरन् ।
हृदये तर्पयेद् द्विधा मूलेन तत्त्व - मुद्रया ॥ ५१

संविदा त्रिः सकृद् वापि तिल-मुद्ग-प्रमाणया ।
ॐ वद वद पदं ब्रूयाद् वाग्-वादिनि पदं ततः ॥ ५२
मम जिह्वाग्रे स्थिरी भव सर्व-पदं ततः ।
सर्व - तत्त्व - वशङ्करि स्वाहान्तां जुहुयान्मुखे ॥ ५३
मुखेऽमृतेन दिव्येन स्वीकार्यात् संविदां ततः ।
दुग्धाम्बु - घृत - माध्वीक - सैन्धव - लवणेन च ॥ ५४
सितयाऽथ गुड़ेनापि पक्वेन कदलेन वा ।
यद्यद्वा मधुरं द्रव्यं पक्वान्नं पनसादिकम् ॥ ५५
तेन सर्वेण जिह्वायां स्वीकुर्यात् साधकोत्तमः ।
दुग्ध-योगेन विजया महा - सिद्धि - प्रदायिनी ॥ ५६
महा - तेज - करी चक्षु-दोषादि विनिवारिणी ।
सा पुनर्जल - योगेन सर्वाजीर्ण - विनाशिनी ॥ ५७
घृतेन मेधामाधत्ते वाग् - देवी - वश - कारिणी ।
प्रतिभामुत्तमां धत्ते धिषणां चाति - निर्मलाम् ॥ ५८
काश - दोषानशेषांश्च मधुना सह नाशयेत् ।
सैन्धवेन महा - वह्नि - प्रदा स्याल्लवेणन च ॥ ५९
सितयाऽथ गुडेनापि सर्व - रोग - विनाशिनी ।
अतीसार - प्रशमनी श्वास-काश - प्रमर्दिनी ॥ ६०
आम - वात - समुद्भूत - ग्रहिणी विनिवारिणी ।
सर्वैर्वा मधुरैर्युक्ता सर्वामय - विनाशिनी ॥ ६१
कट्वा च संयुता चैव मधुरं वर-दायिनी ।
ज्ञान-विज्ञान-दाक्षिण्य - शील - मार्ग - प्रकाशिनी ॥ ६२

बहुना वा किमुक्तेन केवला चित्-स्वरूपिणी ।
प्रकाशिता तथापि स्यात् कर्तव्या च सु-गोपिता ।। ६३
अथ स्वीकृत्य विजयां सहस्रारे गुरुं जपेत् ।
पादुका - मन्त्रमुच्चार्य चतुर्थ्यन्तं निवेदयेत् ।। ६४
पञ्च-भूतोऽथ बीजान्ते गन्धादि-पञ्चकं दिशेत् ।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमौ जप्त्वा श्रीगुरु-पादुकाम् ।। ६५
इष्ट-देवं च तन्मन्त्रं प्रजपेद् विहरेत् सुधी ।
एवमभ्यासतो मन्त्री कुर्यात् संवत्सरं ततः ।। ६६
तेजस्वी बलवान् वाग्मी मेधावी प्रिय-दर्शनः ।
रूप - यौवन - सम्पन्नो नाना - गुण - समाश्रयः ।। ६७
भविष्यति न सन्देहो विजया च नित्य-सेवनात् ।
संविदा केवलायास्तु सेवनात् किन्न सिद्धयति ।। ६८
संविदासवयोर्मध्ये संविदैव गरीयसी ।
संवित्-प्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमैः ।। ६९
कर्तव्यश्च महा-पूजा करणीया सु-निश्चितैः ।
तथा तथा प्रकर्तव्यं संविदासव - योजनम् ।। ७०
एक - वारं द्वि-वारं वा त्रि-वारं पञ्च-वारकम् ।
तोलकं वा तदर्द्धं वा तोलक-द्वयमेव वा ।। ७१
न्यूनाधिकायां मात्रायां सिद्धि - हानिः प्रजायते ।
तस्मात् प्रमाण-मात्रा हि कर्तव्या सिद्धिमिच्छता ।। ७२
एतत् ते कथितं सर्वं विजया - कल्पमुत्तमम् ।
प्रसादादचिरां येन सिद्धिमाप्नोति नित्यशः ।। ७३

इत्युक्तः स मया शक्रो निर्भरानन्द-नन्दितः ।
भक्त्या परमया युक्तस्तत् - कर्तुमुप - चक्रमे ॥ ७४
संवत्सरं प्रति - दिनं प्रयतस्त्रि - कालम् ।
शक्रो निषेव्य विजयां विधिना बलिष्ठः ॥ ७५
जित्वा बलासुरमसावसुर - प्रतोलीम् ।
प्रापय्य वेश्म - शमनस्य सन्नद्ध - कामः ॥ ७६
एतद् - रहस्यमुदितं परमं निगूढं ।
गोप्यं पशौ न कथनीयमिदं कदाचित् ॥ ७७
उत्कण्ठया तव ममानन पूर्व - वृत्तम् ।
देवि ! त्वयाऽपि विधिना प्रविधीयतां तत् ॥ ७८

॥ इति महा-चीनाचार-सार-तन्त्रे सर्वाचार-सारोत्तमोत्तमे महा-चीनाचार-क्रमे सप्तमः पटलः ॥

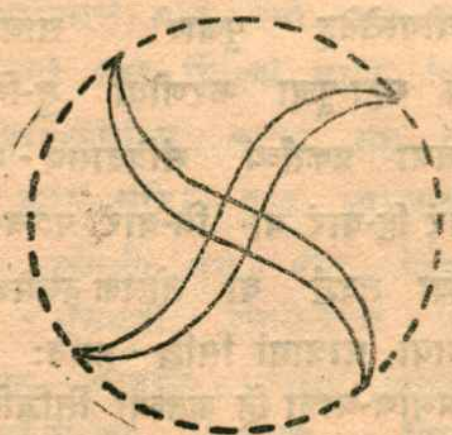

महा-चीनाचार-सार तन्त्र

(हिन्दी-सारांश)

पहला पटल : महाचीनाचार-क्रम का महत्त्व

श्रीदेवी ने महेश्वर शिव से 'महा-चीनाचार-क्रम' के सम्बन्ध में पूछा, जिस पर उन्होंने इस गुप्त आचार का रहस्योद्घाटन करते हुये बताया कि यह आचार सिद्धि का देनेवाला है। ब्रह्मा के मानस पुत्र वशिष्ठ ने प्राचीन काल में कामाख्या योनि-पीठ के क्षेत्र में स्थित नीलाचल पर सहस्रों वर्षों तक भगवती तारा की आराधना की, किन्तु ये उन पर प्रसन्न न हुईं। इस पर वे कुपित होकर मन्त्र-जप छोड़कर ब्रह्मा जी के पास पहुंचे और अपना क्षोभ प्रकट किया। ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि 'भुवन-तारिणी तारा विद्या तत्त्व-ज्ञान-मयी है। उसी की कृपा से मैं चौदह भुवनों की सृष्टि करता हूँ। इसी की आराधना के फल-स्वरूप तत्त्व-ज्ञानी होकर विष्णु उन भुवनों का पालन करते हैं और रुद्र-मूर्ति धारण कर शिव जगत् का संहार करते हैं।'

इस पर वशिष्ठ जी ने कहा कि 'यह विद्या तो अति कठिनाई से आराधनीया है क्योंकि सहस्रों वर्षों तक नीलाचल पर निवास करते और हविष्य भोजन करते हुये मैंने इसकी आराधना की। यहाँ तक कि मात्र जल पीते हुये भी मैंने साधना की, एक पैर से खड़े निराहार रहते हुए भी मैंने मन्त्र-जप किया किन्तु दश सहस्र वर्ष बीत जाने पर भी सफलता नहीं मिली। अतः दुखी होकर इस दुस्साध्य विद्या को छोड़कर मैं आपके पास आया हूँ।'

ब्रह्मा जी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि 'तुम पुनः नीलाचल पर जाओ और कामाख्या योनि का आश्रय लेकर दृढ़तापूर्वक व्रत का पालन करो। तुम्हें शीघ्र ही सिद्धि मिलेगी। इस विद्या के समान दूसरी कोई विद्या तीनों लोक में नहीं है। इसे छोड़ कर और किस विद्या को तुम ग्रहण करोगे ?'

विवश होकर ब्रह्मा जी को प्रणाम कर वशिष्ठ मुनि पुनः कामाख्या-योनि के क्षेत्र में आये और पूजा-सामग्री एकत्र कर जितेन्द्रिय हो महा-देवी तारा की पुनः आराधना करने लगे किन्तु सहस्र वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी जब उन्हें सफलता नहीं मिली, तो वे बड़े रुष्ट हुये और हाथ में जल लेकर वे तारिणी विद्या को शाप देने को उद्यत हुये। उनके शाप से सारी पृथ्वी काँप उठी और चारों ओर हाहाकार मच गया। तब तारा देवी प्रकट हुईं और उन्होंने मुनि-श्रेष्ठ वशिष्ठ जी से कहा कि 'तुमने क्रोध में आकर मेरी विद्या को शाप क्यों दिया ? इस विद्या की आराधना का आचार केवल बुद्ध-रूपी जनार्दन ही जानते हैं। उस आचार को जाने बिना तुमने व्यर्थ ही इतने वर्षों तक श्रम किया। मेरे तत्त्व को जाने बिना विरुद्धाचार का पालन करने से तुम्हें सिद्धि कैसे मिलती ! अतः तुम बुद्ध-रूप में विद्यमान विष्णु के पास जाओ और उनके द्वारा बताए गए आचार के अनुसार मेरी आराधना करो। तब मैं तुम पर प्रसन्न होऊँगी, इसमें सन्देह नहीं।'

दूसरा पटल : चीनाचार की विधि

श्री देवी को शिव जी ने आगे की घटना बताते हुये कहा कि भगवती तारा को प्रणाम कर महा-मुनि वशिष्ठ जी आचार के सम्बन्ध में जानने की इच्छा से हिमालय के पार्श्व में स्थित

महा चीन (प्राचीन ?) देश में जाकर बुद्ध-रूपी विष्णु के पास पहुंचे। वे यह देखकर चकित हो गए कि भगवान् बुद्ध सहस्रों स्त्रियों से घिरे हुये ध्यान-मग्न बैठे हैं। मदिरा-पान से उनके नेत्र मतवाले हो रहे हैं और बिना किसी भय या लज्जा के वहाँ शृङ्गार-मय क्रिया-कलाप चल रहे हैं। श्री वशिष्ठ जी आश्चर्य से सोचने लगे कि बुद्ध-रूपी विष्णु वेद-मत के विरुद्ध यह कैसा आचार-पालन कर रहे हैं! ऐसा वे सोच ही रहे थे कि वहाँ आकाश-वाणी हुई कि हे सुव्रत! इस प्रकार का विचार मत करो। भगवती तारिणी की साधना के लिए यही आचार सार्थक है। यदि तुम उनकी प्रसन्नता चाहते हो, तो इसी चीनाचार (प्राचीन आचार ?) का पालन करो।'

आकाश-वाणी को सुनकर वशिष्ठ रोमाञ्चित हो उठे। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बुद्ध-रूपी विष्णु के पास जा पहुँचे। मदिरा के आनन्द से मतवाले भगवान् बुद्ध ने वाशिष्ठ जी को देखकर उनसे पूछा कि 'तुम यहाँ किसलिए आये हो ?'

वशिष्ठ जी ने भक्तिपूर्वक बताया कि मैं देवी तारिणी के निर्देशानुसार उनकी आराधना के सम्बन्ध में जानने के लिए आया हूँ।

तब श्रीबुद्ध ने कहा कि भगवती तारिणी का यह आचार गोपनीय है, फिर भी तुम्हारी भक्ति देखकर मैं इसे बताता हूँ। तारा देवी के इस आचार से समृद्धि मिलती है। इसके अनुष्ठान मात्र से भव-सागर में डूबना नहीं पड़ता। सभी प्रकार के दुःखों को शान्त करनेवाला और साक्षात् विशेष मोक्ष-रूपी फल को देनेवाला यह आचार है।

इस आचार में स्नानादि शौच-कर्म मानसिक ही होते हैं और जप भी मानसिक ही किया जाता है। पूजन-तर्पण आदि सभी कर्म मानसिक होते हैं। इस आचार में सभी समय शुभ माना जाता है, कोई अशुभ समय नहीं होता। दिन, रात्रि, सन्ध्या या महा-निशा—किसी को विशेष नहीं माना जाता। वस्त्र, आसन, स्थान, गृह, शरीर आदि किसी की शुद्धि नहीं की जाती। मन के निर्विकल्प होने से शुद्धि की आवश्यकता ही नहीं होती।

इस आचार में मद्यादि पदार्थों में दोष नहीं माना जाता। स्नान किए बिना और भोजन करके—सभी अवस्था में देवी की पूजा की जाती है। महा-निशा में अपवित्र स्थान में मन्त्र द्वारा बलि दी जाती है। स्त्रियों से किसी प्रकार का द्वेष नहीं होना चाहिये अपितु विशेष कर उनकी पूजा करनी चाहिए। स्त्रियों पर प्रहार करना, उनकी निन्दा करना, उनसे बुरा व्यवहार करना या उनको जो अप्रिय हो, ऐसा काम करना—सर्वथा वर्जित है। ऐसा करने से सिद्धि नहीं मिलती।

स्त्रियाँ देवता हैं, स्त्रियाँ प्राण-स्वरूप हैं, स्त्रियाँ ही विभूषण हैं—इस प्रकार स्त्रियों को सदैव आदर के साथ समीप रखना चाहिये। स्त्रियों के हाथ से चुने हुये पुष्प, उन्हीं के हाथ से लाया जल और उन्हीं के हाथ से प्रस्तुत द्रव्य देवताओं को निवेदित करना चाहिये। विशाल पुराने वृक्ष से जैसे लतायें लिपटी होती हैं, उसी प्रकार स्त्रियों से घिरा हुआ साधक यदि रात्रि में मन्त्र का जप करे, तो उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। इस पद्धति से जप करना शवासन पर बैठकर जप करने से भी बढ़कर है। श्मशान-गृह में पहुँच कर मुक्त-केश और दिगम्बर होकर स्त्रियों के सहित जप करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

तारिणी, दक्षिणा काली, भैरवी और सुन्दरी की साधना इस महा-चीन-क्रम द्वारा करने से अच्छी सिद्धि मिलती है। सुन्दरी और भैरवी की साधना की अन्य पद्धति भी है किन्तु तारिणी और दक्षिणा काली की साधना में चीन-क्रम के बिना सिद्धि नहीं मिलती।

जिस कुल (परिवार) में 'कुल' अर्थात् शक्ति का ज्ञानी होता है, उस परिवार के पितृ-जन आनन्द मनाते हैं और गुण-गान करते हैं। कुल-धर्म के शास्त्रों को जानकर जो साधना करता है, वही श्रेष्ठ साधक माना जाता है और जो कुल-शास्त्रों को समझे विना साधना करता है, वही पापी होता है।

जो महा-चीनाचार से तारिणी का सदा भजन करता है, वही धन्य है, ज्ञानी है, कवि और पण्डित है, कुलीन है, पुण्यात्मा और साक्षात् शिव-स्वरूप है, साधक है, ब्राह्मण है, वेदज्ञ है, अग्नि-होता और दीक्षित है, तीर्थ-वासी है, संन्यासी और योगी है, मुक्त है, वैष्णव-शैव-सौर-गाणपत है और ब्रह्म-वित् है।

तीसरा पटल : कुल-धर्म की महिमा

श्रीशिव ने देवी से कहा कि बुद्ध - रूपी विष्णु के वचन सुनकर वशिष्ठ मुनि ने हाथ जोड़ कर पुनः पूछा कि महाचीनाचार क्रम में आपने मदिरा और योषिद् (स्त्री) की प्रधानता बताई है। कृपया यह बताइये कि इन दोनों में कौन प्रधान है ?

उत्तर में भगवान् बुद्ध ने बताया कि इस आचार में ये दोनों समान रूप से प्रधान हैं किन्तु स्त्रियों को विशेषतया प्रधानता है क्योंकि उनके शरीर में जगदम्बा की और सभी देवताओं की अवस्थिति है। अतः सभी पूजाओं में उनकी प्रधानता कही गई है।

इस पर वशिष्ठ जी ने स्त्रियों की पूजा का विधान पूछा और भगवान् बुद्ध ने उन्हें बताया कि महामाया का पूजन योनि-पीठ, मन्त्र-पीठ और मनः-पीठ (पाठान्तर से यन्त्र-पीठ)—इन तीन पीठों पर की जाती है। इन तीनों में योनि-पीठ की ही प्रधानता है। उस पर पूजा करने से देवी शीघ्र ही प्रसन्न होती हैं। अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ उसी से प्राप्त होती हैं।

योनि-पूजा-विधि से सर्वार्थ-सिद्धि होती है। इस सबन्ध में १ नटी, २ कापालिनी, ३ वेश्या, ४ रजकी, ५ नापिताङ्गना, ६ ब्राह्मणी, ७ शूद्र-कन्या, ८ गोपाल-कन्या और ९ मालाकार की कन्या—ये नौ कन्यायें बताई गई हैं। ये सभी गुरु द्वारा मन्त्र से दीक्षिता होनी चाहिए, तभी साधना में लेने योग्य हैं। दीक्षा-रहित कन्या के साथ साधना करने से नरक की प्राप्ति होती है, यह सर्वथा निश्चित है।

पूजा-काल के सिवा अन्य समय में दिगम्बरी शक्ति को नहीं देखना चाहिए और न ही सुरा-पान करना चाहिए अन्यथा आयु की हानि होती है और नरक में जाना पड़ता है। सुख की इच्छा से जो दर्शन या पालन करता है, वह नपुंसकता को प्राप्त होता है। शक्ति के उच्छिष्ट (प्रसाद) के बिना जो पान करते हैं, वे नराधम होते हैं।

शुक्राचार्य ने सुरा को शाप दिया था, जिस पर ब्रह्मा जी ने उनसे कहा था कि 'यह लौकिकी सुरा देवताओं का अमृत है। कुलाचार में इसी के द्वारा ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है और सौत्रामणि यज्ञ में इसी से देवता तृप्त होते हैं। अतः अपने शाप को दूर कीजिए।'

इस पर शुक्राचार्य ने शाप-मोचन के लिए तीन मन्त्रों का विधान किया—(१) 'एकमेव परं ब्रह्म' इत्यादि, (२) 'सूर्य-मण्डल-सम्भूते' इत्यादि और (३) 'वेदानां प्रणवो बीजं' इत्यादि (देखें पृष्ठ १४)।

केवल आद्य तत्त्व (मद्य) से पूजन करनेवाला भैरव - रूप होता है। द्वितीय तत्त्व (मांस) से पूजन करनेवाला ब्रह्म-रूप, तृतीय तत्त्व (मत्स्य) से महा-भैरव-स्वरूप, चतुर्थ-तत्त्व (मुद्रा) से पृथ्वी पर साधकों का नायक और पञ्चम तत्त्व से सर्व-सिद्धि-परायण योगी होता है।

कौल साधक के लिए पाँच बातें वर्जित हैं—१ प्रायश्चित्त, २ वीर्य-पात, ३ संन्यास, ४ व्रत और ५ तीर्थ-यात्रा।

चौथा पटल : कुल-द्रव्य का विधान

श्रीवशिष्ठ ने भगवान् बुद्ध से कहा कि पात्रों का लक्षण और 'कुल-द्रव्य' के निर्माण की विधि बताइए। साथ ही यह भी मैं सुनना चाहता हूँ कि सविधि पान का क्या फल होता है और विधि-हीन पान से क्या पाप होता है?

श्रीबुद्ध ने कहा कि पात्र के आधार-हीन होने से मातायें तृप्त नहीं होतीं। अतः विधि-वत् आधार की व्यवस्था करनी चाहिए। आधार को 'त्रिपद', 'चतुष्पद' या 'षट्-पद' अथवा सुन्दर 'गोला-कार' होना चाहिये। इसी प्रकार पात्र को स्वर्ण, चाँदी, शिला, कूर्म, कपाल, मृण्मय या पवित्र वृक्ष के काष्ठ से बनवाना चाहिये। स्वर्ण और रत्न के पात्रों से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं।

पैष्टी द्रव्य बनाने की विधि (देखें पृष्ठ १७-१८) बता कर श्रीबुद्ध ने कहा कि देवताओं और पितरों का पूजन कर शास्त्रोक्त

विधि से मद्य-पान और मांस-भोजन करने से दोष नहीं होता। जो मद्यादि का सेवन सुख की इच्छा से करता है, वह नरक को जाता है। देवता की प्रसन्नता के लिये ही पान करना चाहिये, स्वेच्छानुसार मद्य-पान नहीं करना चाहिये। इस 'कुल-धर्म' के ज्ञान से चाण्डाल भी ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ बन जाता है। भगवती तारा इस धर्म के पालन करनेवाले को मोक्ष प्रदान करती हैं।

श्रीवशिष्ठ ने पूछा कि सब धर्मों में उत्तम 'कुल-धर्म' के सम्बन्ध में मैं जानना चाहता हूँ।

श्री बुद्ध ने कहा कि सामान्य जनों से उत्तम 'वेदाचार' वाले होते हैं। उनसे उत्तम 'वैष्णव', वैष्णव से उत्तम 'वाम', वाम से उत्तम 'सिद्धान्त' और सर्वोत्तम 'कौल' होते हैं। 'कौल' से उत्तम कोई नहीं है। वेद और तन्त्र के अथाह साहित्य को ज्ञान द्वारा विवेचन कर सार-रूप में यह 'कुल-धर्म' प्राप्त किया गया है। केवल एक इसके ज्ञान से यज्ञ, तीर्थ, व्रत आदि सभी पुण्य कर्मों का फल मिल जाता है। सभी दर्शन-शास्त्र और सभी प्रकार के समय (मत) 'कुल-धर्म' में समाविष्ट हैं। सभी कौलिक लोग जीवन्मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। 'कौल-धर्म' के समान अन्य कोई धर्म नहीं है क्योंकि योगी भोग नहीं कर सकता और भोगी योग नहीं कर सकता किन्तु 'कौल-धर्म' में योग और भोग—इन दोनों का सामञ्जस्य है। इसकी सर्व-श्रेष्ठता इसी से स्वयं-सिद्ध है।

पाँचवाँ पटल : समयाष्टक

श्रीबुद्ध ने कहा कि मैं आठ समयों अर्थात् नियमों को बताता हूँ—१ काम, क्रोध, मात्सर्य, विकार, इन्द्रियों की वासना, निद्रा,

लज्जा और दौर्मनस्य—इन आठ का 'घातन' करे। २ मन्त्र, मुद्रा, अक्ष-सूत्र (माला), योगिनी-वीर का सम्मिलन, भैरवागम, कुलचार—इन सब का 'गोपन' करे। ३ देवता, गुरु, सुरा, विद्या, साधक, स्त्रियाँ, शुभ और अशुभ कर्म—इन सबकी कभी 'निन्दा' न करे। ४ कन्या-योनि, पशु-क्रीडा, नग्ना-स्त्री, प्रकट-स्तनी, द्यूत, विग्रह, पाप-कर्म—इन सबका कभी 'अवलोकन' न करे। ५ गुरु, देवी, साधु, शक्ति, अव्यय आत्मा और साधक—इन सबकी भक्तिपूर्वक सदा 'पूजा' करे। ६ गुरु - वाक्य, उपदेश, साधूक्ति, इष्ट-देवता, स्व-धर्म, कुलाचार और आत्मा—इन सबकी सदा 'भावना' करे। ७ अगम्या-गमन, धूर्त, उन्मत्त, वञ्चक, असत्य और पाप-गोष्ठी—इन सबका सदा 'वर्जन' करे। ८ विण्मूत्र, रक्त, क्लेद, हीनाङ्गी, मांस, सुरा और कपाल—इन आठ के प्रति कभी 'जुगुप्सा' न करे।

इस प्रकार 'समयाचार' का जो पालन करता है, वह देवी की कृपा प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाता है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो उसे प्राप्त नहीं होती।

श्रीदेवी ने शिव जी से पूछा कि 'कुलाचार' में मद्यादि से सिद्धि कैसे प्राप्त होती है ? मदिरा-पान और पर-स्त्री की सेवा तो अधर्म है ! कृपया मेरे सन्देह को दूर करें।

श्रीशिव ने कहा कि प्राचीन काल में एक सुन्दर वन में श्रेष्ठ साधक लोग मद्य-पान और पर-स्त्री-सेवन पूर्वक साधना कर रहे थे। उन्हें देखकर ब्रह्मा जी को भी मोह हुआ था और उन्होंने भी ऐसा प्रश्न किया था। तब मैंने उन्हें बताया था कि यह 'चीनाचार'-क्रम है। ये साधक नित्य महा-विद्या उग्र-तारा के मन्त्र का जप करते हैं और उन्हीं की पूजा करते हैं। ये सभी

देवी-भक्ति-परायण और जीवन्मुक्त हैं। मद्य-पान और स्त्री-सेवन द्वारा ये अश्वमेधादि यज्ञों से भी अधिक फल प्राप्त करते हैं। इनकी निन्दा करनेवाली महा-पापी होते हैं। आपने पाप किया है, अतः मेरे सामने से दूर हो जायँ। इस पर ब्रह्मा जी म० विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने भी मेरे कथन की पुष्टि की और ब्रह्मा जी को सलाह दी कि जाकर उन साधकों से क्षमा माँगो और उन्हें प्रसन्न करो। तभी आप पाप-मुक्त होंगे। इस पर ब्रह्मा जी वापस वन में गये और उन साधकों को प्रणाम कर प्राथना द्वारा उन्हें प्रसन्न किया।

इसी महा-चीन-क्रम के आचार को बुद्ध से प्राप्त कर वशिष्ठ जी ने नीलाचल में जाकर 'चीनाचार' के साथ मुक्ति-प्रदा तारा की आराधना की और उनसे वर प्राप्त किया। भगवती तारा के ही प्रसाद से वशिष्ठ जी आज भी स्वर्ग में सुप्रतिष्ठित हैं।

छठा पटल : रहस्य-विधान का वर्णन

श्रीशिव जी ने पार्वती जी को रहस्यमयी पञ्च-तत्व-मुद्रा एवं शक्ति-साधना की विधि बताई (देखें पृष्ठ २८-३०), जो सब प्रकार से गोपनीया है।

सातवाँ पटल : विजया-कल्प

श्रीदेवी ने पूछा कि योगियों को बल और पुष्टि-दायक, मन की चञ्चलता को करनेवाली और समाधि को सुलभ बनानेवाली कौन सी वस्तु है ?

इस पर श्रीशिव ने 'विजया' की महिमा बताते हुये उसे प्रस्तुत करने और सेवन की विधि का वर्णन किया (देखें पृष्ठ ४१)।

शाक्त-धर्म

सम्बन्धी

प्रामाणिक पुस्तकों के लिए

सम्पर्क करें

चण्डी कार्यालय

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६